अंक ३

वर्ष ३६

वैदिक धर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान-प्रचारक सचित्र मासिक-पत्र

★



मार्च १९५५ फाल्गुन २०११

वैदिक धर्म

[मार्च १९५५]

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सहसंपादक

महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

विषयानुक्रमणिका

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से ५।।) रु. विदेशके लिये ६।।) रु.

हिन्दी विद्यामन्दिर – जोहानिसबर्ग

(दक्षिण आफ्रिका) का

षष्ठ – सप्तम वार्षिक हिन्दी व संस्कृत

प्रमाणपत्र वितरणोत्सव



" राष्ट्रभाषा कोविद ' व ' संस्कृत प्रारम्भिणी और प्रवेशिका प्रमाणपत्र प्राप्त करनेके बाद परीक्षार्थी माण्य अतिथि व कार्यकर्ताओंके साथ ।



उद्‌घाटन समारम्भमें स्वामीजीके अध्यक्षत्वमें श्री दीनबन्धु रेवरण्ड ए डबल्यू ब्लेक्सॉल धार्मिक प्रवचन देते हुए ।



उद्‌घाटन समारम्भमें वैदिक बृहद्‌भरी पूर्णाहुति ।



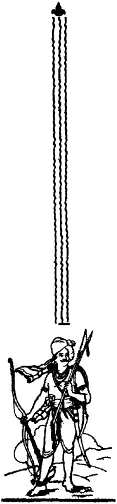
सरस्वती सम्मेलनमें मानवमेदनीका उमड़ता हुआ दृश्य ।

(प्रमाणपत्र वितरणोत्सव विवरण पृष्ठ ६८ पर देखें)

वर्ष ३६ **वैदिक धर्म** अंक ३

क्रमांक ७५

फाल्गुन, विक्रम संवत् २०११, मार्च १९५५



वीरके कर्मोंकी प्रशंसा

कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरंदरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥

ऋ० ७।६।२

(कविं केतुं) दूरदर्शी, ज्ञानी, (अद्रेः धासिं) किलोंके संरक्षक (भानुं) तेजस्वी (रोदस्योः शं राज्यं) द्यावा पृथिवीके ऊपर सुखदायी राज्यशासन चलानेवाले (पुरंदरस्य अग्ने) शत्रुके किलोंको तोडनेवाले अग्निके समान तेजस्वी अग्रणी वीरके (पूर्व्या महानि व्रतानि) प्राचीनकालमें किये महान पुरुषार्थके पराक्रमोंको (गीर्भिः आ विवासे) वाणीसे वर्णन करता हूं ।

दूरदर्शी ज्ञानी नगररक्षक, तेजस्वी राज्यशासन सुखदायी रीतिसे करनेवाले, शत्रुके नगर तोडनेवाले वीरके पराक्रमोंका वर्णन हम करें । जिससे हमारे अन्दर वैसो पराक्रम करनेकी शक्ति आ जाय ।

परीक्षा विभाग

हिन्दी विद्यामन्दिर -- जोहानीसबर्ग

(दक्षिण आफ्रिका) का

षष्ठ-सप्तम वार्षिक प्रमाणपत्र वितरणोत्सवका विवरण

भारतसे ५००० मील दूर दक्षिण आफ्रिकाके जोहानीसबर्ग शहरमें भारतकी सेवा हिन्दी विद्यामन्दिर राष्ट्रभारती हिन्दी, देवभारती संस्कृत व गीता आदि प्रचार परीक्षाओंके साथ भारतके भावी आशास्वरूप भारतीय बाल-बालाओंमें राष्ट्रीय, धार्मिक व सांस्कृतिक शिक्षाकी गहरी असर डलवानेका यथाशक्य प्रयास करती चली जा रही है।

इस बारका महोत्सव दिन ता. ९-१-५५ को कुछ और ही प्रभा लिये सुमन्द, शीतल समीरके साथ आया। कार्यक्रमका आम जनताको विशेष लाभ मिले इस दृष्टिसे जोहानीसबर्गके स्थानीय बडे बडे सार्वजनिक भवनोंमें व विभिन्न स्थानोंमें विविध संमेलन अपूर्व समारोहपूर्वक मनाये गये।

इस अवसर पर दक्षिण आफ्रिका व उसके समीप आफ्रिकी प्रदेशोंसे ज्ञान धन महानुभावोंको निमंत्रित किया गया था, जिनमें प्रात:स्मरणीय पूज्य गांधीजीके आदर्श आत्मज व सच्चे कर्मयोगी श्री. मणिलाल गांधी, रामकृष्ण मिशन सेंटरके दक्षिण आफ्रिकाके महाभाग्य श्रद्धेय, स्वामी श्री. निश्चलानन्दजी महाराज, आफ्रिकामें हिन्दीके गौरव एवं प्राणस्वरूप पं. नरदेवजी वेदालंकार, शिक्षणप्रेमी व सेवामूर्ति डा. नगीनदास पुरुषोत्तमदास देसाई, डा. हरिशंकरजी आयुर्वेदालंकार, दीनबन्धु रेवरण्ड ए. डबल्यू. ब्लेक्सॉल, वीटवाटर्सरांण्ड युनीवर्सिटीमें बाण्टू भाषाओंके प्राध्यापक श्री. एल. डबल्यू. लेन्हम आदि व्यक्तियोंने अपना अमूल्य समय देकर हिन्दी विद्यामन्दिरके कार्यको गौरवमय बनाया। इसके अतिरिक्त रोडेशिया, लोरेन्सो मार्क्वीस, बयरा आदि स्थानोंसे आनेवाले हिन्दी व संस्कृतिके प्रखर कार्यकर्ता पं. रविशंकरजी विद्यालंकार, पं. सुमन्तरायजी विद्यालंकार, पं. मतिमानजी वेदालंकार, पं. जगमोहनजी विद्यारत्न आदि थे, जो सरकारी इजाजत न मिलनेके कारण लाचारीसे उपस्थित न हो सके जिसका हमें अत्यन्त खेद है।

महोत्सवका प्रथम उद्घाटन समारम्भ, प्रात: ठीक ८।१५ बजे जोहानीसबर्गके फाईसबर्ग विभागमें पाटीदार हालमें श्रद्धेय स्वामी श्री. निश्चलानन्दजीके अध्यक्षत्वमें मंगलगानके साथ प्रारम्भ हुआ, बालिकाओंने स्वामीजीका भाव भरा स्वागत किया। संस्थाके मुख्याधिष्ठाता पं. अरुणकुमारजी विद्यालंकारने भावभीने शब्दोंमें श्रद्धांजलि दी।

इसके बाद श्री नाथुभाई मोतीराम मिस्त्रीके यजमानत्वमें वैदिक बृहद्यज्ञ व भजन कीर्तन किया गया। बाद संस्थाके बालकोंद्वारा भावभरे गीतोंमें राष्ट्रपताका व ॐ पताकाका अभिवादन किया गया। वि. जमुबहन परभुभाई पटेल, वि. कान्तिलाल रामभाई पटेल और वि. कलावती भीखाभाई पटेलने अनुक्रमश: राष्ट्रपताका, ॐ पताका और वैदिक धर्मकी महत्ताको जनताके समक्ष अपने शब्दोंमें पेश किया। तत्पश्चात् ज्ञानमूर्ति पं. नरदेवजी वेदालंकार, मौलवी आई. एम सालुजी, श्री. कुँवरजी जीवनजी तवडिया, श्रीमती सुदेशकुमारी बाबुलाल गांधी व दीनबन्धु रेवरण्ड ए. डबल्यू. ब्लेक्सॉलने अनुक्रमश: हिन्दू, इस्लाम, जरथोस्ती, सिक्ख व ईसाई धर्म पर मार्मिक धार्मिक प्रवचन दिये। दीनबन्धु रेवरंड ब्लेक्सॉलने अपने प्रवचनमें विशेष उल्लेख करते हुए कहा कि धर्मके झंझटोंमें न पड, मानव धर्मको मानते हुए मानव मात्रकी उन्नतिमें ही संसारकी उन्नति है। प्रत्येक मानव अपने समयको मानव मात्रकी उन्नतिके निमित्त व्यय करे तो संसारके वैमनस्य भाव दूर हो सकते हैं। डा. हरिशंकरजी आयुर्वेदालंकारने बोलते हुए कहा कि हिन्दी विद्यामन्दिरके कार्यकर्ता धर्म और राष्ट्रका जो सुमेल करके भारतीयताका प्रचार कर रहे हैं वह सचमुच ही जोहानीसबर्गका ही नहीं अपितु समस्त दक्षिण आफ्रिकाका गौरव है। तदनंतर स्वामीजीने अध्यक्ष पदसे जनताको जागृत करनेवाले शब्दोंमें सर्वप्रथम जनतासे अपील की कि ऐसी संस्था जो भारतीय भाषा, भावना, संस्कृति व सभ्यताके प्रचारके निमित्त हो ऐसी संस्थाको

अपना लेना ही नहीं चाहिये बल्कि प्रत्येकको, अपनी ओरसे जो भी मदद इस संस्थाको कर पायें इसके लिये सतत प्रयत्नशील रहना, यह भारतीय होनेके नाते सर्वप्रथम कर्तव्य है। ज्ञानकी महत्ता अपार है, और जिसमें अपनी संस्कृतिका हमें लाभ मिले ऐसे ज्ञानको पाना सचमुच ही हमारे लिये ही नहीं अपितु भविष्यमें आनेवाली प्रजा तथा भारतीयेतरोंको भी अविछुण्ण लाभ है। ··· इसके अनन्तर शांति पाठके साथ प्रातःकालीन अधिवेशन समाप्त हुआ।

ठीक दुपहरको आकाशमें मँडराते श्यामल पयःपुर घन घटाओंकी रिमझिम रिमझिमके साथ २।१५ बजे जोहानीसबर्ग शहरके फरेरास्टाडन विभागमें गांधी हॉलमें डॉ. नगीनदास पुरुषोत्तमदास ईसाईके अध्यक्षत्वमें वक्तृत्व-स्पर्धा सम्मेलन मंगलगीत व स्वागतगीतके साथ प्रारम्भ किया गया। प्रथम श्री. उमियाशंकर जोशाकरने अध्यक्षका परिचय दिया और स्वागत किया। "प्रवासी भारतीयोंको भारतीय संस्कृति व भाषाओंकी आवश्यकता है।" इस विषयपर विद्यामन्दिर-में पढते हुए विद्यार्थियोंमें वक्तृत्व-स्पर्धा हुई जिसमें सर्व-प्रथम वि. मगुभाई मूलाभाई पटेल तथा दूसरे व तीसरे नम्बर पर वि. कुँवरजी भीखाभाई मिस्त्री व वि. दिनकर-राय हरिभाई मकनजी रहे। इन्होंने अपनी बहुत ही सुन्दर शैलीमें भारतीयताकी महत्ता दिखाई। इसके अनन्तर निर्णा-यक महोदयोंमेंसे श्री. पं. नरदेवजी वेदालंकारने अपना मन्तव्य बतलाते हुए कहा कि इतने कम उम्रके बालकोंने जिस सुन्दर शैलीमें हावभाव, भाषा व भारतीयताको सामने रक्खा है वह सचमुच ही टान्सवालकी जनताके भावी मार्गदर्शक व सच्चे कार्यकर्ता बनेंगे। जोहानीसब-र्गकी जनताका कर्तव्य है कि इस संस्थाको पूर्णतः सहयोग देना ही चाहिये। तत्पश्चात् कुछ विशिष्ट व्यक्तियोंके प्रवचन हुए और अन्तमें अध्यक्ष पदसे डॉ० देसाईने संक्षिप्तमें कहा कि छोटे छोटे विद्यार्थियोंका निर्भीकता पूर्वक शान्त स्वरमें ज्ञानमय शब्दोंमें स्पष्टरूपसे बोलना वास्तवमें ही इनकी शिक्षणकी उत्तमता दिखाई देती है। मैं इन छात्र-छात्राओंको और इनके शिक्षक, कार्यकर्ता व सहयोगियोंको सचमुच ही हार्दिक बधाई देता हूँ। अन्तमें वन्दे मातरम् गीतके साथ मध्याह्नकालीन अधिवेशन परिपूर्ण हुआ।

सन्ध्यामें सुवर्णनगरी जोहानीसबर्गका हृदय आज भार-तीय भावोंके प्रवाहसे आप्लावित था। शहरमें चहुँ ओर रंग-बिरंगी साडियोंके कारण चतुर्दिग् मेघधनुषसा नजर आता था। ऐसे इस अवसर पर अपूर्व समारोहके साथ जोहानी-सबर्गके सबसे बडे सार्वजनिक भवन (सीटी हॉल) में रातको ठीक ८।१५ बजे संस्थाके अध्यक्ष डॉ. रसिकलाल उमियाशंकर महेताके अध्यक्षत्वमें सरस्वती सम्मेलन अपूर्व मानव मेदनीके बीच प्रारम्भ किया गया। इस समयका दृश्य ऐसा लग रहा था मानो मानवरूपी सागर हिन्दी विद्यामन्दिरके कार्यरूपी पूर्णचन्द्रको देखकर उमड रहा हो।

सर्व प्रथम ईश-प्रार्थना व आये हुए मान्य अतिथियोंका और भारतीयता प्रेमी जनताका अपूर्व कलात्मक ढंगसे संस्थामें पढनेवाली बालाओंने स्वागत किया। तदनन्तर कार्यारम्भमें स्वागताध्यक्ष श्री. प्राणशंकर सोमेश्वर जोशीके स्वागत प्रवचन व सभापतिजीके अध्यक्षीय भाषणके बाद संस्थाके केन्द्र सहायक श्री. गोविन्दभाई रामाभाई पटेल द्वारा देश विदेशोंसे आये हुए कई सन्देश पेश किये गये। जिनमें विदेशमें भारतीयताकी महत्ताका खयाल रखकर भारत व भारतीयेतर प्रदेशोंसे प्राप्त संत, कवि, लेखक व शिक्षणशास्त्री तथा भारत सरकारके केन्द्रीय व प्रान्तीय अधिकारी व अन्य अनेक समाज सेवक, विवेचक, व्यापारी आलमके शाही सौदागर और नागरिकोंके थे।

केन्द्र समर्थक बॅरीस्टर श्री. देवजीभाई मिस्त्रीने आजके मान्य प्रमाणपत्र प्रदाता व जोहानीसबर्ग शहरके नगरपति श्री. सी. जे. एच. पेटमोर-एम. पी. सी., जो किन्हीं अत्यावश्यक कारणोंसे यकायक यूरोप गये होनेसे सम्मेलनमें उपस्थित न हो सके उसका उल्लेख करते हुए स्वामी श्री निश्चलानन्दजी महाराजका परिचय कराया। तदनन्तर स्वामीजीके करकमलों द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओंमें उत्तीर्ण ८ कोविद, २१ परिचय, २३ प्रवेश, ३६ प्रारम्भिक और संस्कृतभाषा प्रचार परीक्षाओंमें उत्तीर्ण ४ प्रवेशिका, ३५ प्रारम्भिणी मिलाकर कुल ८८ हिन्दी और ३९ संस्कृत प्रमाणपत्र तथा पारितोषिक वितरण किये गये। फिर स्वामी-जीने कहा कि हिन्दी विद्यामन्दिरके आचार्य श्री. हरिश्च-न्द्रजी *आर्य तथा मुख्याधिष्ठाता पं.* अरुणकुमारजी विद्या-लंकारका सतत प्रयत्न, धुन व विद्याप्रेम है, जिसके फल-स्वरूप आज हिन्दी विद्यामन्दिर है। धन्य हैं इनके माता पिताको ... जिन्होंने अपना त्यागमय जीवन बिता इन दो भाईयों द्वारा विद्या व भारतीय संस्कृति प्रचार करवा रहे

है। विद्यामन्दिरके कार्य तथा व्यवस्थाको देख मुझे बडी खुशी हुई। मैं इनकी सहृदय सफलता चाहता हूँ। तदनन्तर उत्तीर्ण विद्यार्थियोंको बधाई देते हुए कहा कि अपनी संस्कृति व भाषा संसारमें सबसे पुरानी होनेपर भी आज भी नयी है यही इसकी विशेषता है। इसलिये आपको इसे अपनानेका पूर्ण प्रयत्न कर स्वतन्त्र भारतके गौरवको बढाना चाहिये। पुनश्च तुम अपने इस शिक्षणको न भूलाकर इसको कई गुना विस्तारें और अपने जीवनको इसी शिक्षणके अनुकूल बनावें ताकि भारतीय संस्कृतिके द्वारा सच्ची मानवता फैलकर विश्वशान्ति फैले।

इसके अनन्तर माननीय प्रवचकोंमें डॉ. वाई. एम. दादू, जो कोंग्रेसके प्राणस्वरूप हैं। उनपर सरकारी अवांछनीय प्रतिबन्ध होनेके कारण इस तरहके शैक्षणिक कार्यक्रममें भी उपस्थित न हो सके जिसका सभीको अत्यन्त खेद रहा। तत्पश्चात् पूज्य महात्मा गांधी बापूजीके पुत्र श्री. मणिलाल गांधीने अत्यन्त उत्साह एवं भावभरे शब्दोंमें " यथार्थ रूप " जनताके समक्ष प्रगट करते हुए कहा कि जोहानीसबर्ग ही नहीं अपितु दक्षिण आफ्रिकाके इतिहासमें इस अपूर्व मानव मेदनीके बीच यह प्रसंग बहुत ही महत्वका है। हिन्दी-संस्कृत परीक्षाओंमें उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र दिये जानेका कार्यक्रम छोटे रूपमें भी हो सकता है पर उसको विशाल रूप देकर उसकी महत्ता दिखाना ही है। हिन्दी प्रचारका कार्य-केन्द्र वर्धा है उसी प्रकार संस्कृत, गीता, वेद, उपनिषद् आदि कई परीक्षाओंका केन्द्र स्वाध्याय-मण्डल आनन्दाश्रम, पारडी है। इन परीक्षाओंकी परीक्षा व्यवस्था मुख्य केन्द्रसे ही होती है। जोहानीसबर्गमें श्री. हरिश्चन्द्रजी आर्य तथा उनके छोटे भाई पं. अरुणकुमारजी विद्यालंकार और डरबनमें पं. नरदेवजी वेदालंकार व डॉ. हरिशंकरजी आयुर्वेदालंकार, और इसी प्रकार लोरेन्सो मार्क्वीसमें पं. सुमन्तरायजी विद्यालंकार आदि इनके प्रचारका कार्य बडी लगन व श्रद्धासे करते हैं। सामान्य रूपसे माता पिता अपनी संतानोंको विदेशोंमें डॉक्टरी या वकालतका विद्याभ्यास कराने भेजते हैं जिसका हेतु भविष्यके लिये धनप्राप्तिका है परन्तु केवल इसके ज्ञान और धनसे ही अपनी जातिकी उन्नति नहीं होती पर अपनी जाति, संस्कृति व संस्कारकी उन्नतिके लिये अपने देशकी भाषाका ज्ञान, संगीत, कला, गृह उद्योग आदि विद्याओंमें उत्तीर्ण लोगोंकी भी इस देशमें जहाँ कोई भी व्यवस्था नहीं है, वहाँ इसकी खास जरूरत है। अतः श्री. जीवणजीभाई आर्य जो श्री. हरिश्चन्द्रजी आर्य व पं. अरुणकुमारजी विद्यालंकारके पिता हैं और जोहानीसबर्गसे २० मील दूर क्रुगर्सडार्प नामक जगहपर अपना छोटासा व्यवसाय करते हैं, धन्यवादके पात्र हैं। इन्होंने अपनी भारत-भक्ति, धर्म-प्रेम, संस्कृतिप्रेम व भावी भारतीयोंका ख्याल कर अपने दोनों पुत्रोंको गुरुकुलमें भेज विद्याभ्यास करवा हमारी जातिकी सचमुच ही सेवा की है।

हम इस देशमें पाश्चात्य बुराइयोंको ग्रहण करके अर्थवादमें इतने घुलमिल गये हैं कि अन्य कार्यमें जितना बढावा देते हैं, उसका एक चतुर्थांस भी अपनी भाषा संस्कृति व सभ्यताको टिकाये रखनेके लिये जो काम करते हैं उनको बढावा नहीं देते। मैंने देखा कि श्री. हरिश्चन्द्रजी व उनके भाई पं. अरुणकुमारजी बहुत ही सुन्दर कार्य कर रहे हैं, पर उन्हें हमारे समाजके कार्यकर्ता जितना प्रोत्साहन देना चाहिये उतना नहीं देते। वे अपने कुछ सहयोगियोंकी मददसे अधिकतर अपने अकेले हाथोंसे ही कार्य चला रहे हैं। मुझे इनके कार्योंको देखकर अत्यन्त खुशी हुई। मैं इनके कार्योंकी सराहना करता हूँ और श्री. हरिश्चन्द्रजीको बधाई देता हूँ। साथ ही स्थानीय कार्यकर्ताओंसे मुझे आशा है कि वे इनके कार्योंकी कद्रकर प्रोत्साहन व सहायता देंगे इसीमें अपनी और अपनी जातिकी उन्नति, शोभा व महत्ता है तथा अपनी भावी प्रजाका कल्याण भी है।

श्री. मणिलाल गांधीके प्रवचन बाद पं. नरदेवजी वेदालंकारने जनतासे अपील की कि आप अपना यथाशक्य प्रयत्न कीजिये अन्यथा हाथ मलकर पछतानेका अवसर न आये। हमें इस देशमें अपनी भाषा और संस्कृति ही सहायक हो सकती है। सच्ची भारतीयता ही हमें यहाँ गौरवमय जीवन बितानेका अवसर दे सकती है। अतः हमें अपना तन, मन, धन ऐसी संस्थाओंके विकासमें अर्पण करना चाहिये अन्यथा आनेवाली सन्तति हमें न कोसे कि हमारे मातापिताओंने हमें कुछ भी न दिया।

केन्द्र व्यवस्थापक श्री. मणिभाई के. पटेलने जनताको

बुलढाणा जिला संस्कृतभाषा--प्रचार सम्मेलन

चिखली (मध्य प्रदेश)

दिनाङ्क १५-१६ जनवरीको यह सम्मेलन बडे उत्साहके साथ नगरपालिका माध्यमिक शालामें मनाया गया। ता. १५ को रात्रि ८॥ से १०॥ तक प्रचारकोंकी एक सभा हुई, जिसमें देउळगांवके केन्द्र व्य. श्रीमान् राघवेंद्र अम्बादासरावजी जोशी, मेहेकरके केन्द्र व्य० श्रीमान् महादेवरामचन्द्र कानीटकर प्रान्तीय कार्यवाह श्रीयुत विष्णु त्रिंबक दीक्षितजी, आकोला सं. भा. प्र. समितिके मन्त्री श्रीयुत वि ह. पण्डित, बुलढाणाके निष्ठावान् प्रचारक श्रीयुत दे र. आंबेकर, भारत विद्यालयके आचार्य श्रीयुत आगाशे, चिखलीके उत्साही कार्यकर्ता श्रीमान् र. भ. विनिवाले, प्रधानाध्यापक श्रीयुत दि. वि. कुळकर्णी, सरकारी हाईस्कूलकी संस्कृत अध्यापिका, श्रीमान् वर्णेकरजी एवं श्रीपरीक्षामन्त्रीजी उपस्थित थे।

रविवारका दिन प्रातः ८ से लेकर रात्रि ११ तक कार्यक्रमोंसे भरा हुआ था। सम्मेलनका उद्घाटन 'संस्कृत भवितव्यम्' के यशस्वी सम्पादक श्रीमान् वर्णेकरजी द्वारा हुआ। सर्व प्रथम बालिकाओंने संस्कृतमें स्वागतगान गाया। इसके पश्चात् इस प्रचार संमेलनके सचिव श्रीमान् दि. वि कुळकर्णी महोदयने अपने प्रास्ताविक भाषणमें बताया कि 'चिखलीके नगराध्यक्ष महोदयके उदार सहयोग एवं आत्मीयताके कारण ही यह इतना विशाल कार्यक्रम आज हम आयोजित कर पाये हैं। वास्तवमें इसका प्रथम एवं मुख्य श्रेय उन्हें दिया जाना चाहिये। हमारे आग्रहसे वे अस्वस्थ होते हुए भी आज यहाँ उपस्थित होकर हमारा जो उत्साह बढा रहे हैं, तदर्थ हमारा अन्तःकरण कृतज्ञतासे भरा हुआ है। हम हृदयसे उनका आभार मानते हैं। इसके पश्चात् आजके प्रमुख अतिथि श्रीमान् वर्णेकर महोदय एव परीक्षामन्त्री श्री महेशचन्द्रजी शास्त्रीका स्वागत करते हुए भी हमें परम आनन्द हो रहा है। संस्कृत सम्मेलनोंमें इतने विशाल जन समुदायको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जनता हमारे इस कार्यमें हमारे साथ है। आइये हम सब मिलकर इस सांस्कृतिक जागरणसे राष्ट्र-मन्दिरको सजावें।'

इस प्रास्ताविक भाषणके पश्चात् श्री परीक्षामन्त्रीजीने स्वाध्याय मण्डल द्वारा होनेवाले भारतमें एवं विदेशोंमें होनेवाले वर्तमान संस्कृत प्रचार कार्यका विवरण बताया और यह आशा व्यक्त की कि देश एव विदेशोंमें एकता, आत्मीयता एवं उच्चताके वातावरणका निर्माण एक दिन इसी सुरभारती द्वारा होगा।

इसके पश्चात् प्रमुख वक्ता श्रीमान् वर्णेकरजीने अपनी सरल एवं सुललित संस्कृत वाणीमें अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण द्वारा लगभग एक घण्टेतक जनताको मन्त्रमुग्धसा बना दिया। आगत जनोंने बडी श्रद्धासे उनके भाषणको सुना।

आपने अपने भाषणमें संस्कृतके गौरवका वर्णन करते हुए आज भी उसके प्रचारकी आवश्यकता पर जोर दिया।

मध्याह्नके समय मध्य प्रदेशकी विभिन्न शालाओंसे आनेवाले बालक-बालिकाओंकी भिन्न भिन्न प्रतियोगितायें हुईं।

यह कार्यक्रम बडी सफलतासे सम्पन्न हुआ।

संस्थाका संक्षिप्त परिचय कराया व संस्थाके केन्द्र संचालक व आचार्य श्री. हरिश्चन्द्रजी आर्यने संस्थाका आय-व्यय ब्यौरा पेश किया। तदनन्तर स्वागत मन्त्री श्री. छोटुभाई गोविन्दजी पटेलने सबका हार्दिक धन्यवाद प्रकट किया।

विश्रान्तिके बाद यहाँके सुप्रसिद्ध जादूगर प्रोफेसर कारवानीने जनताके मनोरंजनके निमित्त अपने जादूके अद्भुत खेल दिखाकर सचमुच ही आश्चर्यचकित किया। तत्पश्चात् विद्यार्थी और विद्यार्थिनियोंने गीत, नृत्य, संगीत, प्रहसन व हिन्दी एकांकी नाटिका "हृदय-पलटा" द्वारा कलात्मक ढंगसे जनताको मनोरंजन कराया। अन्तमें राष्ट्रगीतके साथ कार्यक्रम परिपूर्ण हुआ और हिन्दी चर्चाके साथ सभा विसर्जित हुई।

मध्याह्न ३॥ बजे संस्कृतानुरागी सज्जनोंकी एक सभा हुई। इस सभामें अन्य आगत अतिथियोंके अतिरिक्त मलकापुरके केन्द्र व्य. श्रीयुत वि० नो० उन्हेकर तथा बुलढाणाके एडेड हाईस्कूलके केन्द्र व्य. श्रीमान् गोविन्द दिनकर नामजोशी आदि महानुभाव भी उपस्थित थे।

मध्यप्रदेशमें विशेष रूपसे संस्कृत भाषाका प्रचार किस प्रकार वृद्धिंगत हो, इसपर विचार किया गया। मुख्य चार प्रस्ताव स्वीकृत हुए। जिनका सारांश यह था कि- १-इस प्रकारके जिला सम्मेलन प्रतिवर्ष आयोजित किये जांय, २-नगर समितियोंकी स्थापना की जावे तथा उनके द्वारा जिला संगठनोंके कार्यको सुदृढ किया जाय, ३- मध्य प्रदेश सरकार द्वारा जो प्रोत्साहन संस्कृत प्रचारके इस कार्यके लिये दिया जा रहा है तदर्थ उसे धन्यवाद दिया जाय, ४-रेडियोपर संस्कृतके कार्यक्रमोंको प्रचलित करनेके लिये एक योजना बनाई जाय। सभी प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे स्वीकृत किये गये।

रात्रि विविध मनोरंजनके कार्यक्रम किये गये। इन कार्यक्रमोंकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि ये सारे कार्यक्रम संस्कृत भाषामें ही थे। दो घण्टेके इस सुन्दर, कलात्मक एवं आदर्श कार्यक्रममें जिन बालक बालिकाओंने भाग लिया था उन्हें सबको पारितोषिक दिये गये। पारितोषिक वितरणका कार्य श्रीमान् परीक्षामन्त्रीजीके कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

सबको धन्यवाद देते हुए श्री परीक्षामन्त्रीजीने इस कार्यक्रमके महत्वको समझाया और बताया कि इसके द्वारा छात्रोंके मनोंमें संस्कृत भाषाके प्रति विशेष अभिरुचि निर्माण होती है।

इसमें भाग लेनेवाले सभी छात्रोंको स्वाध्याय मण्डलकी ओरसे भी पारितोषिक देनेकी घोषणा की गई।

बहुत बडा जनसमुदाय इस कार्यक्रममें उपस्थित था। राष्ट्रगीतके पश्चात् यह कार्यक्रम समाप्त हुआ।

सूचना— यवतमाळ (गर्ल्स हाईस्कूल) केडिला, तुळजापुर, वाढवणा, आष्टी, बीड, लातूर, महेसाणा, उस्मानाबाद केन्द्रके प्रमाणपत्र वितरणोत्सव आगामी अंकमें प्रकाशित किये जावेंगे।

परीक्षा-विभाग

आवश्यक सूचनायें

परीक्षा-फल-तिथि

मध्यप्रदेश तथा अन्य समस्त प्रान्तोंका संस्कृत-भाषा-परीक्षाओंका परीक्षा-फल तारीख ३० अप्रैल १९५५ ई० को प्रकाशित किया जाएगा।

साहित्यिक परीक्षाओंका फल

गत ८-९-१० जनवरी ५५ ई० को हुई साहित्यिक परीक्षाओंका परीक्षा-फल ता० १ अप्रैल १९५५ ई० को प्रकाशित किया जाएगा।

बृहत्तर भारतमें गणेश-पूजा

लेखक— श्री बालचन्द्र जैन, एम ए.



भारतीय साहित्य और धर्मग्रथोंमें गणेशजीके पचासों नाम मिलते हैं। इनमेंसे गणेश, गणपति, विनायक, गजानन, विघ्नराज, लम्बोदर, एकदन्त आदि या इन्हींके अर्थका बोध करानेवाले कुछेक अन्य पर्यायवाची नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। इन नामोंमेंसे कुछ तो उनके गणोंके बीचकी स्थिति, कुछ उनके कार्य और कुछ उनकी शारीरिक विशेषताओंके आधार पर प्रचलित हैं। इसी प्रकार भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें उनके भिन्न भिन्न रूपों और भिन्न प्रकारके कार्योंका विवरण मिलता है। कहीं तो इन्हें कल्याण करनेवाला और विघ्नोंका हर्ता कहा गया है यथा श्री काशी केदारनाथ महात्म्यमें—

विघ्नध्वान्त निवारणैकतरणिर्विघ्नाटवी हव्यवाड्,
विघ्नव्याल कुलोपमर्द गरुडो विघ्नेश पंचानन।
विघ्नोत्तुंगगिरीश मर्दनपविर्विघ्नाब्धि कुम्भोद्भवो,
विघ्नाभौघ घन प्रचण्ड पवनो विघ्नेश्वरः पातु नः॥

और कहीं उन्हें भयकराकृति और पुण्यकार्योंमें विघ्न करनेवाला बताया गया है। यथा वाराहपुराणमें—

नमस्ते गजवक्त्राय नमस्ते गणनायक।
विनायक नमस्तेऽस्तु नमस्ते चण्डविक्रम॥
नमोऽस्तु ते विघ्नकर्त्रे नमस्ते सर्प मेखल।
नमस्ते रुद्रवक्त्रोत्थ प्रलम्बजठराश्रित॥
सर्व देव नमस्कारादविघ्नं कुरु सर्वदा।

ऊपरके श्लोकमें गणेशजीको नमस्कार इसलिये किया गया है कि वे बडे भयकर हैं, चण्डविक्रम हैं और विघ्न उपस्थित कर देनेवाले हैं। सबसे पहले उन्हें नमस्कार कर लेनेसे वे प्रसन्न हो जाएगे। किन्हीं अन्य ग्रन्थोंमें यह तो स्वीकार कर लिया गया है कि वे विघ्नस्वरूप हैं, पर ऐसा मानकर कि वे नमस्कार और स्तुति करनेसे कल्याण भी कर देते हैं, उनकी वदना की गई है। यथा—

विघ्नाय विघ्ननाशाय संख्यातीताय मायिने।
रुद्राय भद्ररूपाय गणाधिपतये नम॥

भागवत् (१०-६-२८) में विनायक श्री गणेशजीकी गिनती अपदेवोंमें की गई है यथा—

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माडा येऽर्भकग्रहा।
भूतप्रेत पिशाचाश्च यक्षरक्षो विनायका॥

हरिवंश पुराणमें भी इसी प्रकारका उल्लेख है। 'राक्षसाश्च पिशाचाश्च भूतानि च विनायकाः' लेकिन इसके विपरीत कहीं कहीं गणेशजीके आध्यात्मिक स्वरूपकी भी व्याख्या की गई है, यथा— शारदातिलकके त्रयोदश पटलमें—

वेदान्तगीतं पुरुष भजेऽहमात्मानमानन्दघनं हृदिस्थम्। गजाननं यन्महसा जनानां महान्धकारो विलय प्रयाति॥

इसी प्रकार एकदन्त स्तोत्रमें—

सदात्मरूपं सकलादिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्य बोधम्। अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥

गणेशजीके नामको आध्यात्मिक नाम बनानेकी योजनाको भी लक्षित कीजिये—

ज्ञानार्थवाचको यश्च यश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम् ॥

गणेश-पूजाका व्यापक प्रचार

गणेशजीकी पूजाका प्रचार कबसे हुआ, इस सम्बन्धमें निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगोंका कहना है कि वैदिककालमें भी उनकी पूजा होती थी और वेदोंमें उनसे संबद्ध मंत्र विद्यमान हैं। यह सत्य है कि वेदोंमें 'गणपति' शब्दका प्रयोग मिलता है, लेकिन प्रसंग और मन्त्रका पूरा अर्थ देखनेपर स्पष्ट विदित हो जाता है कि वह इन गणेशजीके लिये व्यवहृत नहीं हुआ है। ऋग्वेदमें बृहस्पतिके लिये, यजुर्वेदमें अश्वमेधके अश्वके लिये और तैत्तिरीय उपनिषदमें रुद्रके लिये गणपति शब्दका प्रयोग हुआ है। अन्यत्र भी कहीं वैदिक मंत्रोंमें और उपनिषदोंके छन्दोंमें गणेशजीका कोई उल्लेख नहीं मिलता। हां, पुराणोंमें इन्हें खासा स्थान और सम्मान मिला है, इससे ध्वनित होता है कि गणेशजीकी पूजाका प्रचार पुराणकालमें प्रारम्भ हुआ। तबसे वे घर घरके देवता बन गये और हर कार्यके प्रारम्भमें उनको प्रथम स्थान दिया जाने लगा। जो पक्ष उन्हें विघ्नकर्ताके रूपमें जानता था वह उनके भयसे त्रस्त होकर, और जो उन्हें विघ्नहर्ता मानता था वह मंगल-कार्यकी सिद्धिकी आशासे सबसे पहले प्रणाम करता और बलि समर्पित करता था।

आज हिन्दुओंके घर घरमें गणेशजी विराजमान हैं। भारतमें जितनी अधिक उनकी मूर्तियां मिलती हैं, उतनी शायद ही अन्य किसी देवताकी प्राप्त होती हों। गणेशजीके स्वतंत्र मन्दिर तो वैसे कम ही मिलते हैं, पर और देवताओंके मन्दिरोंमें भी उन्हें स्थान प्राप्त है, वह भी सबसे पहले। हिन्दू धर्मके अतिरिक्त बौद्ध और जैनधर्ममें भी गणेशजीको सम्मान प्राप्त है। बौद्ध ग्रन्थोंमें विनायकी शक्तिका स्वरूप 'हस्ताकार समायुक्ता' मिलता है। महायान बौद्धधर्ममें गणेशजी और विनायकके सम्बन्धमें अनेक मन्त्र मिलते हैं। एक मन्त्र देखिये, जिसमें गणेशजीका पूरा वर्णन मिलता है। यथा—

भगवन्तं गणपतिं रक्तवर्णं जटामुकुटकिरीटिनं सर्वाभरणभूषितं द्वादशभुजं लम्बोदरैकवदनं अर्द्धपर्यंकताण्डवं त्रिनेत्रमप्येकदन्तं सव्यभुजेषु कुठारशरांकुशवज्रखड्गशूलं च वामभुजेषु मूषलचापखट्वांग-असृक्कपाल-शुष्कमांसकपालफटकं च रक्तपद्मे मूषिकोपरिस्थितमिति।

जैनधर्ममें गणेश नामके किसी पृथक् देवका उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन भगवान् महावीरके प्रथम गणधर गौतम इन्द्रभूतिको बहुधा गणेश कहा गया है, क्योंकि वे महावीरके शिष्यगणमें प्रमुख थे। कहीं कहीं भगवान् जितेन्द्र देवको ही गणेश माना गया है, क्योंकि वे भिन्न भिन्न गणोंके ईश थे।

बहिर्देशोंमें गणेश

भारतसे बाहर अनेक देशोंमें भारतीयोंने अनेक उपनिवेश स्थापित किए थे। भारतीय संस्कृतिका दूर दूर तक प्रचार हो चुका था। पश्चिममें तुर्किस्तानसे लेकर मलय, द्वीपपुंज, बालि, जावा, बोर्नियो, स्याम, कम्बोडियातक भारतीय लोग जाकर बसे थे। यहां आज भी हिन्दुओंके अनेक स्मारक मिलते हैं। इन्हीं हिन्दुओं द्वारा इन देशोंमें गणेश-पूजाका प्रचार हुआ। वहां गणेशजीकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी मूर्तियां बनाई गईं। ये मूर्तियां हैं तो प्रायः भारतीय मूर्तियोंके सदृश ही, परन्तु उनमें कुछ विशेषताएं भी होती हैं। भारतीय मूर्तियोंमें गणेशजी प्रायः पद्मासन, स्वस्तिकासन या अर्द्धासनसे बैठे मिलते हैं। इन आसनोंमें उनके पांव एक दूसरेके ऊपर नीचे रहते हैं, लेकिन जावा आदि देशोंकी मूर्तियोंमें वे इस प्रकार पालथी मारकर बैठे हैं कि दोनों पांव भूमिपर सम पड़े हैं और उनके तलवे परस्पर मिले रहते हैं। भारतीय मूर्तियोंमें प्रायः बीचमें ही उनकी सूंड बाएंको घूम जाती है, पर भारतके बाहरकी मूर्तियोंमें वह प्रायः सीधे जाकर सिर पर घूमती है। कुछेक मूर्तियां मुण्डमालसे भी विभूषित हैं और उनके सिंहासन पर भी नरमुण्ड खचित हैं। एक मूर्ति पर सिंहासनके चारों ओर अग्निशिखाएं दिखाई गई हैं। उक्त मूर्तिमें गणेशजीके हाथमें भी मशाल है। ऐसा अक्सर बालि द्वीप की मूर्तियोंमें होता है। बालि द्वीपमें राजा-रानीकी मृत्यु हो जानेपर उनकी मूर्ति बनाकर उन्हें देवपद दे दिया जाता था और उनकी मूर्तियोंके दाहने गणेशजीकी मूर्ति बना दी

जाती थी। मशाल लिये गणेशजीकी मूर्ति यह संकेत करती है कि गणेशजी बालिमें स्वर्गलोकका मार्ग दिखानेवाले माने जाते थे।

जावामें गणेशजीकी विलक्षण और सुन्दरतम मूर्तियां मिलती हैं। एक मूर्ति तो सचमुच ही अत्यन्त सुन्दर है। ऐसी सुन्दर मूर्ति भारतमें भी कम ही मिलती है। इसमें गणेशजीका एकमुख, दो आंखें और चार हाथ हैं। एक हाथमें टूटा दांत, दूसरेमें भोजनपात्र, तीसरेमें परशु और चौथे हाथमें माला है। सूंड बिलकुल सीधे नीचेतक लटकती है और फिर सिरेपर भोजनपात्रकी ओर बाएं घूम गई है। ब्रह्मदेशमें भी गणेशजीकी बहुतसी मूर्तियां मिलती हैं। यहां उन्हें 'महापिएन' अर्थात् महाविनायक अथवा महाविघ्न कहा जाता था। श्याम और कम्बोडिया या कम्बुज देशमें भी गणेशजीकी मूर्तियां बहुत संख्यामें उपलब्ध हैं। इन देशोंपर भारतीय-संस्कृतिका खासा प्रभाव रहा है। कम्बोडियामें गणेशजीको केनेसके नामसे पूजते रहे हैं। इन सभी देशोंमें कुछ मूर्तियां ऐसी भी मिलती हैं, जिनमें गणेशजी वज्रासनसे बैठे हुये ध्यानावस्थित हैं, भूस्पर्शमुद्रा उनकी विशेषता है। संभव है कि वहां उन्हें बोधिसत्त्व मानकर इस प्रकारका रूप दे दिया गया हो; क्योंकि बौद्ध धर्मका इन देशोंमें व्यापक प्रचार रहा है।

बौद्धधर्म भी गणेशजीको दूर दूर विदेशोंमें अपने साथ लेता गया और वहां उसने उनकी स्थापना की। तिब्बत, चीन और जापानमें गणेशजी हिन्दुओं द्वारा पूजित देव नहीं, बल्कि बौद्धोंके देव बनकर अपना प्रभुत्व जमाए हुए थे। वहां उनके अनेक रूप और अनेक प्रकारके ध्यान मिलते हैं। तिब्बतमें मठके द्वारपर इनकी मूर्तियां मिलती हैं। कहीं कहीं वे भ्रकुटितारा या पर्णशवरीके सिंहासनके नीचे और कहीं कहीं अपराजिता, विघ्नान्तक, महाकाल या मञ्जुश्रीके द्वारा दबाए गए दिखते हैं। तुर्किस्तानके बजलिकक नामक स्थानकी गुफामें उनका हाथी और शूकर दोनोंसे मिलता है, एक दूसरे चित्रमें वे इसी रूपमें शिव और कार्तिकेयके साथ मिलते हैं। मञ्जुश्री मूलकल्प नामक बौद्धग्रन्थमें 'हस्ताकार-समायुक्ता वराहाकार सम्भवा' कहकर इसी रूपका वर्णन किया है। तुर्किस्तानकी एक मूर्तिमें गणेशजीका एक पैर सिंह पर और दूसरा चूहे पर स्थित मिलता है। सिंहपर सवारी करनेवाले गणपतिको हेरम्ब गणपति कहा जाता है। पायजामा पहने और तलवारधारी होना तुर्किस्तानकी गणेशमूर्तियोंकी विशेषता है।

चीन देशमें गणेशजी उन यात्रियोंके द्वारा ले जाये गये जो तरह तरहके संकटोंका सामना करते हुये चीनसे भारत आए थे और यहांके विद्यापीठोंमें अध्ययन कर यहांसे अनेक पवित्र ग्रन्थ अपने साथ चीन ले गये थे। गणेशजीके रूपकी भी उन्होंने वहां पहुचकर प्रतिष्ठा की और वहां बुद्धके प्रतीकके रूपमें हाथीके आकारवाले गणेशजीकी पूजा दिनों दिन बढती ही गई। बौद्ध ग्रन्थोमें उल्लेख मिलता है कि गौतमबुद्धकी माताने हाथीके रूपमें उन्हें अपने गर्भमें प्रवेश करते देखा था।

चीनके तुनहुआंग नामक स्थानकी गुफामें दीवारपर अन्य देवताओंके साथ गणेशजीकी भी मूर्ति बनी है। उक्त मूर्तिमें गणेशजीके सिरपर पगड़ी है। कुंगहिसएनकी एक दूसरी गुफामें ईस्वीसन् ५३१ में निर्मित गणेश मूर्ति है। इसके नीचे चीनी अक्षरोमें 'हाथियोंके अमानुषिक राजाकी मूर्ति' लिखा है। चीनमें विनायकको माननेवाले सम्प्रदायको कांगितेन कहते थे। कांगितेन मूर्ति युगलमूर्ति होती थी। इसमें अवलोकितेश्वर स्त्रीके रूपमें और वैरोचन गणेशके रूपमें बनाए जाते थे। कहीं कहीं ऐसा उल्लेख भी है कि इस युगलमूर्तिमें पुरुषमूर्ति गणनाथ अवलोकितेश्वर की है और स्त्रीमूर्ति उनकी शक्ति है। भारतमें भी गणेशजी और उनकी शक्तिकी युगलमूर्तियां मिलती हैं, जो बहुधा अश्लील होती हैं। जापान, तिब्बत और तुर्किस्तानमें भी ऐसी युगलमूर्तियोंकी पूजा होती रही है। कांगितेन अथवा युगलमूर्तिमें पुरुष मूर्तिको हस्तिमुख बनाया गया है। जापानमें गणेशजीकी तीन सिर और छः हाथवाली मूर्तियां भी मिलती हैं और अनेक बौद्धमन्दिरोंमें आज भी उनकी पूजा होती है। इन मूर्तियोंमें गणेशजी अपने हाथमें मूली लिये रहते हैं जो उनके टूटे दांतका प्रतीक हो सकता है।

इस प्रकार भारतसे चलकर गणेशजीने तुर्किस्तान, तिब्बत, ब्रह्मदेश, स्याम, मलय, बोर्नियो, बालि, जावा, कम्बोज और चीन जापान जैसे विशाल देशोंके निवासियोंके हृदयमें स्थान प्राप्त किया। वे भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न रूपोंमें पुजते रहे और इस प्रकार धार्मिक क्षेत्रमें उनका एक विस्तृत साम्राज्य स्थापित हो गया।

संस्कृत-लोकोक्तियाँ

(ले० श्री पं० हरिदत्तजी शास्त्री, एम. ए. विद्याभास्कर)

२१६ उत्प्रेक्षिताद्भयादल्पं वर्तमानं भयं भवेत्।

अर्थः- कल्पित आगामी महाभयके सामने वर्तमान कष्ट तुच्छसे दिखाई देते हैं।

प्रयोगः- अनुभूयमानं कल्पितात्कगरीय यतः उत्प्रेक्षिताद्०।

२१७ उद्धतोऽधिपो न भद्रः।

अर्थः- उद्धत राजा अच्छा नहीं होता।

प्रयोगः- धार्मिको राजा एव राष्ट्रे प्रशस्यते यतोहि उद्धतः०।

'ऊ'

२१८ ऊषरे वपतो बीजं जायते निष्फलः श्रमः।

अर्थः- ऊसरमें बीज बोनेका किया गया प्रयत्न व्यर्थ ही जाता है।

प्रयोगः- ऊषरबुद्धौ विद्या न प्ररोहति— यथोक्तम्— ऊषरे इत्यादि।

'ऋ'

२१९ ऋणकर्ता पिता शत्रुः।

अर्थः- ऋण करनेवाला पिता शत्रु है।

प्रयोगः- पितृकृतं पापं पुत्राः यदा भुञ्जन्ति तदा निन्दन्ति तं तदुक्तम्-ऋणकर्ता०।

२२० ऋणशत्रुव्याधिष्वशेषः कर्तव्यः।

अर्थः- ऋण, शत्रु तथा रोगोंका लेश भी न रखे।

प्रयोगः- समूलमुन्मूलनीया अरयो यतः-ऋणशत्रु०।

'ए'

२२१ एकान्तरितं मित्रमिष्यते।

अर्थः- अपने शत्रुसे परेका जो होगा उसे (स्वाभाविक) मित्र बनाना चाहिए।

प्रयोगः- शत्रोः शत्रुः स्वमित्रं भवितुमर्हति इति नीतिः यतः-एकान्तरितम्०

२२२ एकाङ्गदोषः पुरुषमवसादयति।

अर्थः- शरीरमें किसी भी स्थानमें दोष हुआ तो वह मनुष्यको दुःखी बना देता है।

प्रयोगः- एकैनेव रोगेण शरीरं दुष्यति। उक्तंच-एकांग०।

२२३ एरण्डमवलम्ब्य कुञ्जरः न कोपयेत्।

अर्थ- एरण्डके वृक्षका सहारा लेकर हाथीको क्रोधित न करे।

प्रयोगः- निर्बलमाश्रित्य न बलवता सह युद्धयेत यतोहि एरण्ड०।

२२४ एकोहि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।

अर्थः- बहुतसे गुणोंमें एक दोष ऐसे छिप जाता है, जैसे चन्द्रमाकी उज्ज्वल किरणोंमें उसका काला धब्बा।

प्रयोगः- बहुषु गुणेषु एको दोषोऽन्तर्हितो भवति-तदुक्तम्-एकोहि दोषो गुण०।

२२५ एकां लज्जां परित्यज्य त्रिलोकविजयी भवेत्।

अर्थः- बेशर्मी तेरा ही सहारा।

प्रयोगः- कुलटा कमला न गुरून् गणयति नापि भर्तारं सत्यमेवोक्तम्-एकां लज्जाम्०।

२२६ एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः।

अर्थः- यह मौतके मुँहसे ही लौट आया है।

प्रयोगः- कश्चित् गंगातीरे स्नानार्थं गतः, स तत्रैव निमग्नः, यदा कथंचित् बहिरागतः तस्य मूर्च्छा आपगता तदाह जनः-एषः यम०।

२२७ एकस्य हि विवादोऽत्र दृश्यते प्राणिनो नहि॥

अर्थः- एक हाथसे ताली नहीं बजती।

प्रयोगः- अतिकलहप्रियोऽसौ निवसति रहसि, नायं तत्र विवदते यतः-एकस्य हि०।

२२८ एतस्मादधिकं किञ्चिन्नास्ति लोके जुगुप्सितम्।

अर्थः- इससे गुप्त और क्या होगा।

प्रयोगः- वीरो युद्धात्पलायेत चेद्-एतस्माद्०

२२९ एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा।

अर्थः- एक पंथ दो काज।

प्रयोगः- आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च प्रीणिता, एका०।

२३० एको जनः न कोऽपि जनः ।

अर्थ– अकेला व्यक्ति भी क्या कोई व्यक्ति है ।

प्रयोगः– पुत्र एककः अपुत्र इव यथा एको० ।

२३१ एकस्य बुद्धेर्द्वयोर्बुद्धिर्वरीयसी ।

अर्थः– एकसे दो भले ।

प्रयोगः– वरनिर्वाचने ज्येष्ठानामपि सम्मतिर्ग्राह्या । यतोहि––एकस्य० ।

२३२ एकोप्यनेकः शत्रुः स्याच्छतञ्च सुहृदोऽल्पकाः ।

अर्थः– एक शत्रु भी हजारके बराबर है और बहुतसे मित्र भी गिने चुने ही हैं ।

प्रयोगः–स्व शत्रुं प्रति सावधानेन वर्तव-यतः–एकोऽपि० ।

२३३ एकस्खलनादन्यः शिक्षामाप्नोति पुरुषः ।

अर्थः– एकबार गलती होनेपर दूसरा नसीहत लेता है ।

प्रयोगः–उष्णेन दग्धो जलमपि फूत्कृत्य पिबति यस्मादेक० ।

२३४ एकोऽसतां प्रतीकारोऽवस्थानमति दूरतः ।

अर्थः– दुष्टोंसे बहुत दूर रहना ही उनसे बचनेका एक-मात्र उपाय है ।

प्रयोगः– सन्तः दुष्टान् शठांश्च दमयितुं न शक्ता, अतः तदर्थं तु एकोऽसतां० ।

'औ'

२३५ औचित्यं गणयति को विशेषकार्यः ।

अर्थः– जो अपना मतलब ही गाठना चाहता है, वह अनुचितका विचार नहीं करता है ।

प्रयोगः– स्वार्थी उचितमनुचितं न विचारयति-यतो हि औचित्य०—

२३६ औदार्यं नाधिकं शक्तेः ।

अर्थः– सामर्थ्यसे अधिक उदारता अच्छी नहीं ।

प्रयोगः– सामर्थ्यादधिकं औदार्यं निर्बलतां जनयति यतः–औदार्यम्०

२३७ औषधैर्जीवितं यस्य दुःखार्तं तस्य जीवितम् ।

अर्थः– दवाइयोंसे जिन्दा रहनेवाला दुःखी ही रहता है ।

प्रयोगः– स्वस्थो हि सुखमनुभवति—औषधैः०

२३८ औपरिष्टकपरिच्छदापेक्षया समीचीनोऽभ्यवहारो वरीयान् ।

अर्थः– ऊपरकी दिखावटसे भोजनकी उत्तमता आवश्यक है ।

प्रयोगः– एतद्दृदयेषु मैत्री वर्धते- यथोक्तं–औपरिष्टक० ।

'क'

२३९ कार्यान्धस्य प्रदीपो मंत्रः ।

अर्थः– किंकर्तव्यविमूढके लिए मंत्रणा ही मार्गदर्शिका होती है ।

प्रयोगः– किं कर्तव्यविमूढस्य कृते परैः सह विमर्श एव प्रकाशः-तत्रोक्तम् कार्यान्० ।

२४० कार्यान्तरे दीर्घसूत्रिता न कर्तव्या ।

अर्थः– कार्य हाथमें लेकर दीर्घसूत्रिता न करनी चाहिए ।

प्रयोगः– आरब्धे कर्मणि तस्य मध्ये विघातो न युज्यते यतः कार्यान्तरे० ।

२४१ कक्ष्यादपि औषधं गृह्यते ।

अर्थः– घाससे भी योग्य औषधि निर्माण की जाती है ।

प्रयोगः– बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम् कक्ष्यादपि०

२४२ कथानुरूपं प्रतिवचनम् ।

अर्थः– जैसा प्रश्न हो वैसा ही उत्तर देना चाहिए ।

प्रयोगः– नानर्गलः प्रलापः कर्तव्यः–कथानुरूपं० ।

२४३ कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव ।

अर्थः– कलयुगके वेदान्ती इस तरह बकवास करते फिरते हैं जैसे फागुनमें लड़के ।

प्रयोगः– सत्यच्छद्मवेषिनोऽसाधवोऽधिकं साम्प्रतं दृश्यन्ते कलौ० ।

२४४ कल्पवृक्षोऽप्यभव्यानां प्रायो याति पलाशताम् ।

अर्थः– कल्पवृक्ष भी भाग्यहीनोंके लिए ढाकका पेड़ बन जाता है ।

प्रयोगः– दुर्दैवेन सौभाग्यशालिनोऽपि दरिद्रायन्ते यथा कल्प वृक्षो० ।

२४५ कष्टं निर्धनकस्य जीवनमहोदारैरपि त्यज्यते ।

अर्थ– अहो ! निर्धन पुरुषकी भी कोई जिन्दगी है । उसे स्त्री भी धता बता देती है ।

प्रयोगः– दारिद्र्यात्सर्वं शून्यमिव प्रतिभाति—कष्टं निर्धनकस्य० ।

२४६ कष्टा हि कुटिलश्वश्रू परतंत्र वधूस्थितिः।

अर्थः- दुष्ट सासके फन्देमें फँसकर बहूकी स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है।

प्रयोगः- द्वात्रिंशद्दशनानां मध्ये जिह्वा तथैव भवति यथा कष्टा हि०।

२४७ कस्य नेष्टं हि यौवनम्।

अर्थः- तारुण्य किसे अच्छा नहीं लगता।

प्रयोगः - को नाम नाभिलषति सुवर्णं, कस्य नेष्टं च यौवनम्।

२४८ कस्त्यागः स्वकुटुम्बपोषणविधावर्थव्ययं कुर्वतः?

अर्थः- अपने कुटुम्ब पालनमें धनखर्च करना भी कोई त्याग है क्या?

प्रयोगः - पिता यदि पुत्रं पालयति, किं तत्र पुण्यं, तदुक्तम् — कस्त्यागः ०।

२४९ कूप मण्डूकः।

अर्थः - कुएंका मेंढक।

प्रयोगः - धर्मान्धाः प्रायः कूपमण्डूका एव भवन्ति।

२५० कष्टादपि कष्टतरं परगृहवासः परान्न भोजनं च।

अर्थः- पराए घर रहना और पराया अन्न खाना सबसे बड़ा कष्ट है।

प्रयोगः - संसारे कष्टादपि कष्टतरम्०।

२५१ कथमत्र मक्षिकारणे कुञ्जरसंचारः।

अर्थः- दालभातमें मूसलचन्द्र।

प्रयोगः- शैववैष्णवविवादे आर्या मध्यस्थतां कर्तुं आगताः तान् दृष्ट्वा कश्चिदाह — कथमत्रेत्यादि।

२५२ काको हि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते।

अर्थः- बलि खाता हुआ कौवा भी बहुत दिनोंतक जीवित रहता है।

प्रयोगः - स्वोदरपालनमेव न जीवनोद्देश्यम् — यतः काकोऽपि०।

२५३ कायः कस्य न वल्लभः।

अर्थः- शरीरसे किसे प्रेम नहीं।

प्रयोगः - स्वेषु सर्वस्य आत्मीयता दृश्यते, ततकस्य न कायो वल्लभः स्यात्।

२५४ काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया।

अर्थः- दुःख है कि मैंने काँचके दामोंमें चिन्तामणिको बेच दिया।

प्रयोगः - विषयभोगे निरतेन मया क्षपितं जीवनम् तदिदं काचमूल्येन०।

२५५ काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीं द्युतिम्।

अर्थः- स्वर्णके संसर्गसे काँच भी मरकत मणिकी चमक, धारण कर लेता है।

प्रयोगः - सज्जन सत्संगात् दुष्टोऽपि सुजनायते- यथा —काचः०।

२५६ काश्मीरजस्य कटुताऽपि नितान्त रम्या।

अर्थः- काश्मीरिजोंका कड़ुवापन भी बहुत मोहक होता है।

प्रयोगः - दुग्धदायाः गोः प्रहारोऽपि सह्य एव यथा काश्मीरजस्य०।

२५७ किं दूरं व्यवसायिनाम्।

अर्थः- परिश्रमीके लिए कुछ असाध्य नहीं है।

प्रयोगः - साहसिकाः देशाद्देशान्तरं गत्वा व्यापारं कुर्वन्ति— यतः किं दूरम्०।

२५८ किं गते सलिले सेतुबन्धेन?

अर्थः- पानीमें पड़जानेपर पुल बाँधनेसे क्या लाभ?

प्रयोगः - मृते उपचारेण किम् — यतः किं गते०।

२५९ किं मर्दितोऽपि कस्तूर्या लशुनो याति सौरभम्?

अर्थ- लहसुन कस्तूरीमें मलनेपर भी क्या सुगन्धित हो जाता है?

प्रयोगः- शुनां गंगायां स्नानेन किं, न तेषां पशुता दूरी भवति—यथा किं मर्दितो०।

२६० किञ्चित्कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च।

अर्थः- यौवन और धन अल्प समयतक ही भोगने योग्य रहते हैं।

प्रयोगः- लक्ष्म्या, तारुण्यस्य च दर्पं मा कुरु यतोहि— किंचित्०।

२६१ किमिष्टमन्नं खलु शूकराणाम्।

अर्थ- सूअरोंको अन्न नहीं रुचता।

प्रयोगः-आमिषभोजिनः आमिषमेवाभिलषन्ति तत्रोक्तं किमिदं०

२६२ कीटोऽपि सुमनः सङ्गादारोहति सतां शिरः।

अर्थः- कीडा भी फूलके साथसे सज्जनोंके मस्तक पर चढ जाता है।

प्रयोगः- क्षुद्रोऽपि महतां संगात् उच्चैः पदमासादयति तदाह-कीटोऽपि०।

२६३ कीदृशस्तृणानामाग्निना सह विरोधः।

अर्थः- तिनकोंका आगसे विरोध कैसा।

प्रयोगः- नहि निर्बलानां सबलैः सह विरोधः समञ्जसः- यतोहि कीदृशः०।

२६४ कुकृत्ये को न पण्डितः ?

अर्थः- कुकृत्य करनेमें कौन चतुर नहीं होता ?

प्रयोगः- यद्वधा प्रहरन्तं तं स पाषाणैरवधीत् यतः कुकृत्ये०।

२६५ कुठारैः दण्डनिर्मुक्तैः भिद्यन्ते तरवः कथम् ?

अर्थः- बिना डण्डेके कुल्हाडेसे पेड कैसे काटा जा सकता है ?

प्रयोगः- रावणो विभीषणसाहाय्येन विना न हन्येत, यतः कुठारैः०।

२६६ कुगेहिनीं प्राप्य गृहे कुतः सुखम् ?

अर्थः- अयोग्य गृहिणीको पाकर घरमें सुख कहाँ ?

प्रयोगः- प्रिया भार्या एव गृहे स्वर्गः अन्यथा-कुगेहिनीं०

२६७ कुर्वन्नपि व्यलीकानि यः प्रियः प्रिय एव सः।

अर्थः- जो प्रियः है वह भूलपर भूल करनेपर भी प्रिय ही रहता है।

प्रयोगः- अपराधिनोऽपि प्रिया न परित्यज्यन्ते-यतोहि-कुर्वन्नपि—

२६८ कूपे पश्य पयोनिधावपि घटः गृह्णाति तुल्यं जलम्।

अर्थः-घडा कुएंमें और समुद्रमें बराबर ही जल लेता है।

प्रयोगः- सन्तोषी नरः केवलं शरीरयात्रार्थमेव भोजन-मादत्ते तच्चापि स्वादु वास्वादु वा। तत्रोक्तं कूपे-

२६९ कृपणस्य धनं याति वह्नितस्करपार्थिवैः।

अर्थः- कंजूसका धन आग, चोर और राजाओं द्वारा के लिया जाता है।

प्रयोगः- धनदानेन यतः स्वर्गं च लभते—अन्यथा कृपणस्य०।

२७० कृपणानुसारि हि धनम्।

अर्थः- धन कंजूसके पास ही जाता है।

प्रयोगः- लक्ष्मी कृपणगृहे एव वसति-यतः कृपणा०।

२७१ कृते कार्ये किं मुहूर्तप्रश्नेन ?

अर्थः- कामके हो जानेपर मुहूर्त पूछनेसे क्या लाभ ?

प्रयोगः- संचूर्णितेसु रसालेषु गुटिकापरिगणनेन किं ? यतोहि-कृते कार्ये०।

२७२ केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः किं पुनस्त्रि-दशचापलाञ्छितः।

अर्थः- नया बादल अकेला ही सुन्दर दीखता है, यदि इन्द्रधनुषके साथ हो तो क्या ही कहना है।

प्रयोगः- तन्त्रीवादनं स्वयमेव मनोहरति, किं पुनः सह-कृतं वेणुवादेन—उक्तं च केवलोऽपि०

२७३ केतकी गन्धमाघ्राय स्वयं गच्छन्ति षट्-पदाः।

अर्थः- केतकीकी गन्ध सूंघकर भौंरे स्वयं ही इधर उधर दौड जाते हैं।

प्रयोगः- गुणवतां गुणान् आकर्ण्य जनानां हृदयानि स्वयमेव आकृष्यन्ते—यथा—केतकी०।

२७४ केन कदावलोकितो ज्योत्स्नारहितश्च-न्द्रमाः ?

अर्थः-बिना चांदनीका चाँद क्या किसीने कभी देखा है ?

प्रयोगः- किं जलं विना क्वचित् कमलमपि विलोक्यते ? केन कदा०।

२७५ केन गण्यो गणेशः।

अर्थः-गणेशजीको कौन गिनता यदि वे विघ्नेश्वर न होते।

प्रयोगः- अध्यक्ष पदे, प्रधानमंत्रि पदे अथवा राज्यपाल पदे सर्वत्र कुशल लोक एव पद लभन्ते— केन गण्यो०।

२७६ को न याति वशे लोके मुखे पिण्डेन पूरितः ?

अर्थः- स्वादु भोजनसे पेट भर देनेपर संसारमें कौन वशमें नहीं हो जाता ?

प्रयोगः- 'सत्यमेव विजयते नानृतम्'— इदं कथनं न सम्प्रति युज्यते, यतः को न याति०।

२७७ को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिंचन्ति ?

अर्थः-उगती हुई लताको उष्ण जलसे कौन सींचता है?

प्रयोगः- जन्मजात शिशुं को लगुडेन ताडयति।

२७८ कोलाहले काककुलस्य जाते विराजते कोकिलकूजितं किम् ?

अर्थः- कौओंकी काँ काँ में कोयलकी आवाज कौन सुनता है।

प्रयोगः- बालिशेषु विज्ञानां किं परिसंख्यानम्। यतः कोलाहले०।

२७९ को न दृप्यति वित्तेन ?

अर्थः- धन मिलनेपर किसे घमण्ड नहीं होता है ?

प्रयोगः- लक्ष्मीं प्राप्य जनः प्रमत्तोभवति—यतोहि को न०।

१८० क्रोधो मूलमनर्थानाम्।

अर्थः- क्रोध अनर्थ की जड है।

प्रयोगः- क्रोधसंभवा अविवेकितापि अनर्थाय भवति यतः क्रोधः०।

१८१ कण्टकेनैव कण्टकम्।

अर्थः- काँटेसे काँटा निकाला जाता है।

प्रयोगः- दुष्टः दुष्टव्यवहारेणैव वशे समुपयाति न सरलेन, यतः कण्टकेनैव०।

१८२ कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततोवा।

अर्थः- हररोज ईद कहाँ।

प्रयोगः- जगतः परिवर्तमाना भाग्यपंक्तिः कदाचिदनुकूला कदाचित्प्रतिकूला च भवति—यतोहि कस्यात्यन्तं०

१८३ को धर्मः कृपया विना।

अर्थः- धर्म दयाका मूल है।

प्रयोगः- परंतु दयमानो हि जनोधर्ममर्जयति, यतोहि को धर्मः कृपया विना।

१८४ कुपुत्रेण कुलं नष्टम्।

अर्थः- निपजा वंश कबीरका उपजा पूत कमाल।

प्रयोगः- दुष्टसंगात् सुतुर्दिर्मयति, कुपुत्रेण च कुलं नष्टं भवति।

१८५ कष्टः खलु पराश्रयः।

अर्थः- पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।

प्रयोगः- भृत्यः स्वभाग्यं चिन्तयन् कथयति— कष्टः खलु पराश्रय इति।

१८६ कर्तव्यो खलु महदाश्रयः।

अर्थः- बडोंके सहारे छोटे भी तर जाते हैं।

प्रयोगः- चिताभस्मरजः शंकरशरीरसंस्पर्शात् भक्तैः शिरोभिरुह्यते-तस्मात्कर्तव्यो०।

१८७ करस्थैकः पक्षी कुञ्जस्थपक्षिद्वयेन तुल्यः।

अर्थः- कुंजके दो पक्षियोंसे हाथमें आया एक पक्षी अधिक मूल्यवान् है।

प्रयोगः- परहस्तगतं धनं न. तथा लाभकरं यथा स्वायत्तीकृतं धनं, यतः— करस्थैकः पक्षी०

१८८ काष्ठं ज्वलति निःशब्दं सकलं कण्टकाग्विना। कण्टकास्तु ज्वलन्त्युच्चैर्वदन्तो निज काष्ठताम्।

अर्थः- काष्ठ बिना शब्द किये जल जाता है पर काँटे जलते समय चट चट करते हैं।

प्रयोगः- साध्वी दुःखमसह्यं जोषं जोषं सहते, असाध्वी कुटिलकमला उच्चैराक्रन्दत्यापणवीथिषु, सत्यमेव काष्ठं०।

१८९ कृपणस्य सुतः प्रायोः व्ययशीलः प्रजायते।

अर्थः- कन्जूसका लडका प्रायः खर्चीला होता है।

प्रयोगः- नहि विदुषां कुले विदुषामेव जन्म इति सार्वत्रिको नियमः, यतः कृपणस्य सुतः प्रायो व्ययशीलः प्रजायते।

१९० क्रोधतोऽन्तर्मुखः सत्यमेवात्मने क्रुध्यति।

अर्थः- गुस्सेवाला अन्दर अन्दर जलता हुआ अपने ऊपरका गुस्सा उतारता है।

प्रयोगः- अतिक्रोधत आत्मनएवापकरोति यतः क्रोधतोऽन्तर्मुखः०।

१९१ कार्यं तरुणाच्छिक्षा वयोऽधिकादाशिषश्च वृद्धेभ्यः।

अर्थः- कार्य युवकसे, शिक्षा बडोंसे, आशीर्वाद वृद्धोंसे लेना चाहिये।

प्रयोगः- कस्मात् किं संग्राह्यम्-तत्रोच्यते-कार्यमित्यादि।

केनोपनिषद् और पुरुषार्थवाद

लेखक- श्री गणपतराव बा. गोरे, ३७३ मंगळवार, 'बी' वार्ड, कोल्हापूर

मासिक सविता अजमेरके जनवरी अंकमें ' केनोपनिषद्का प्रथम श्लोक ' शीर्षकका लेख छपा है। लेखक श्री प्राध्यापक वा० विष्णु दयालजी एम० ए० मॉरीशसने योग्य ही लिखा है कि इस मंत्रके वाक्य प्रश्नात्मक भी हैं और उत्तरात्मक भी। मंत्रमें ४ वाक्य आते हैं। इन चारोंके प्रश्नात्मक और उत्तरात्मक अर्थ करनेसे सिद्ध हो जायगा कि मनुष्य परमात्माके हाथमें एक कठपुतलीसा है। वह जैसा चाहता है इसे नचाता है। अर्थ देखिए—

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः ?

प्रश्नात्मक अर्थ— (केन) किसकी (इषितं) इच्छा करनेपर (प्रेषितं मनः) भेजा जानेवाला मन (पतति) दौडता है ?

उत्तरात्मक अर्थ- (केन) सूर्य प्रजापतिकी (इषितं) इच्छासे (प्रेषितं) दौडाए जानेवाला (मनः पतति) मन दौडता है।

स्पष्टीकरण- पुरुषार्थ वा कर्मका आरंभ मनके विचारसे होता है। मन्त्र कहता है कि सूर्य प्रजापतिकी इच्छासे मन दौडता है। सिद्ध हुआ कि जीव मनन वा विचार करनेमें स्वतंत्र नहीं है। ऋ.१०।३७।५ में स्वेच्छासे सदा दौडते रहनेके कारण सूर्यको भी प्रेषितः लिखा है। यही पद अरबी फारसीमें फिरिश्ता= संदेशहर, पैगंबर बना है।

केन युक्तः प्रथमः प्राणः प्रैति ?

प्र० अर्थ- (केन) किससे (युक्तः) जुडकर (प्रथमः प्राणः) पहला प्राण (प्रैति) चलने लगता है ?

उ० अर्थ- (केन) सूर्य प्रजापतिसे जुडकर पहला प्राण चलने लगता है।

स्पष्टी०- गर्भाशयमें मानवजात बालक सूर्यकी उष्णतासे ही श्वासोच्छ्वास करने लगता है। मरनेतक उष्णताके बलपर ही श्वासोच्छ्वास चलते रहते हैं। अर्थात् मनुष्य सांस लेनेमें भी परतंत्र है। असली प्राण तो सूर्य ही है, यथा प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥

अ० ११।४।(६)।१२॥

केन इषितां इमां वाचं वदन्ति ?

प्र० अर्थ— (केन) किसकी (इषितां) इच्छा होनेपर (इमाम्) ये अनेक प्रकारके प्राणी (वाचं) अपनी भिन्न भिन्न भाषा (वदन्ति) बोलते हैं ?

उ० अर्थ— (केन) सूर्य प्रजापतिकी इच्छासे ये अनेक प्रकारके प्राणी अपनी भिन्न भिन्न भाषा बोलते हैं।

स्पष्टी०— ऋ. १।१६६।११ में मरुतों वा सूर्य किरणोंको सुजिह्वः= मधुरभाषी तथा स्वरितारः= उत्तम स्वरसे बोलनेहारे बताया गया है। वाचा वाणी वा भाषाका उत्पादक-पालक होनेके कारण सूर्यका एक नाम वाचस्पति है- देखो अ० १।१ में वाचस्पति सूक्त। ऋ. ५।५२।१५ तथा ५।६१।१५ से मरुत वा सूर्यकिरणें जीवको आवागमन करानेहारी सिद्ध होती हैं, फिर भला प्राणियोंको वाणी सिखाना इनके लिए क्योंकर कठिन हो सकता है? मन्त्रोंने सिद्ध किया कि जन्म और वाणी सूर्य प्रजापतिसे प्राणियोंको मिलती हैं, और उसीकी प्रेरणासे वे आजन्म बोलते रहते हैं! अर्थात् जीवमें तो बोलनेकी भी शक्ति नहीं! प्रत्यक्ष भी दीखता है कि कई बालक अल्पायुमें ही बोलने लगते हैं, और कइयोंको ४-५ वर्षोंतक भी बोलना नहीं आता। पहलोंमें सूर्यकी वाचा शक्ति अधिक है, दूसरोंमें न्यून।

कः उ देवः चक्षुः श्रोत्रं युनक्ति ?

प्र० अर्थ— (उ) भला (कः देवः) कौनसा देव (चक्षुः) आंखोंको (श्रोत्रं) कानोंसे (युनक्ति) जोडता है ?

उ० अर्थ— (उ) निश्चयसे (कः देव) सूर्य प्रजापति ही आंखोंको कानोंसे जोडता है।

स्पष्टी०— इस वाक्यमें बताया गया है कि प्रत्येक ज्ञान व कर्म इन्द्रियका कार्यक्षेत्र अलग है, और प्रत्येक अपने अपने कार्यका ही उत्तरदायी है।

दृष्टांत— मनुष्य जागृत वा स्वप्नावस्थामें एक भयंकर दृश्य देखता है। नेत्रोंका कार्य समाप्त हुआ। अब मन इसपर विचार करके अलग हुआ। बुद्धि आगे बढी और परिणाम सुनाया कि मनुष्यका जीवन बडे संकटमें है। बुद्धिकी बाते सुनकर नेत्र डरसे फटने लगे, शरीर कांपने और जीव घबराने लगा। वाचा, नासिका, त्वचा आदि विवश हैं। इतनेमें कानने सुना— 'घबरा नहीं! मैं तो तेरी रक्षाके लिए शस्त्रोंसे सुसज्ज होकर आया हूं- तुझे मारनेको नहीं आया' कानने यह बात मन-बुद्धिके माध्यमसे आंखोंतक पहुंचाई, जो कि सर्व प्रथम भयभीत हुई थीं। जीव सहित सारा शरीर प्रफुल्लित हो उठा, कारण बुद्धिने फतवा दिया कि डरनेका कोई कारण नहीं। मन्त्र पूछता है कि बताओ कानको आंखसे किस देवने जोडा है? और आप ही उत्तर देता है कि सूर्य प्रजापतिने ही जोडा है।

इस प्रश्नोत्तरीकी विशेषता यह है कि प्रश्नके ही शब्द स्वयं उत्तरका कार्य भी कर रहे हैं। इसमें असत्से सत्की प्रलयसे सृष्टिकी, रात्रिसे दिन और दिनसे रातकी वैदिक उत्पत्तिका संकेत हो रहा है। यह प्रश्नोत्तरी सिद्धकर रही है कि सूर्य ही सृष्टिका अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव॥ ऋ ६।४७।१८॥ सूर्य ही प्रत्येक रूप धारण करता है। मौलाना अकबर आबादीने कहा है—

नये जर्रे नहीं आते चमनमें गुल खिलानेको।
वही जर्रे उभरते हैं वही मिट्टी संवरती है॥

यंत्रके अवयवोंके समान, शरीरका प्रत्येक भाग, प्रत्येक इन्द्रिय भी अपने सीमित क्षेत्रमें ही कार्य करती है परन्तु इतना होनेपर भी सबमें एकसूत्रता है। एकका दुःख सुख दूसरा जान सकता है, ऐसी व्यवस्था सूर्य परमात्माने कर रखी है।

संत भीकाजीने चतुर्थ वाक्यका भाव इस प्रकार जनाया है।

भीका बात अगमकी कहन सुननकी ना।
जो देखे सो ना सुने, सुने सो बोले ना॥

यहां केनोपनिषद्के प्रथम मंत्रकी व्याख्या समाप्त हुई। इसमें मनुष्य-शरीरमें रहनेवाले देवों [इन्द्रियों] का गर्व तोडा गया है- उन्हें परतंत्र सिद्ध किया है।

आगे तृतीय खण्डमें जो जगतमें रहनेवाले देवोंका गर्व-हरण बताया गया है, उसका श्री पं० सातवलेकर कृत अनुवाद इस प्रकार है—

" ब्रह्मके विजयसे सब देव बडे हो गए। वे समझने लगे कि हमारा ही यह विजय है, और हमारी ही यह महिमा है॥ १४॥ उस ब्रह्मने इन देवोंका भाव जान लिया, और उनके सामने वह प्रकट हुआ। तब 'यह पूज्य कौन है' यह वे जान न सके॥ १५॥ वे देव अग्निसे कहने लगे कि जातवेद! यह जानो कि यह पूजनीय क्या है?॥ १६॥ ठीक है, ऐसा कहकर वह दौडता हुआ गया। उसे ब्रह्म बोला कि कौन है तू? मैं अग्नि हूं, जातवेद निश्चयसे मैं हूं, ऐसा उस अग्निने उत्तर दिया॥ १७॥ तुझमें क्या बल है? ब्रह्मने पूछा, इस पृथिवीपर जो कुछ है, यह सब मैं जला दूंगा, अग्निने उत्तर दिया॥ १८॥ ब्रह्मने उसके सन्मुख घास रख दिया और कहा है कि इसको जलाओ। अग्नि उसके पास गया परन्तु सब वेगसे उसको जला न सका। वह अग्नि वहांसे पीछे हटा और देवोंसे कहा कि जो यह पूज्य है उसको जाननेमें मैं असमर्थ हूं॥ १९॥

पश्चात् देवोंने वायुसे कहा कि हे वायो! यह जानो कि (यक्ष) पूज्य कौन है? ठीक है, ऐसा वायुने कहा॥२०॥ और वह दौडा उसे ब्रह्मने पूछा कि तू कौन है? वायु बोला कि मैं वायु हू, मैं मातरिश्वा हूं॥ २१॥ तेरेमें क्या बल है ऐसा पूछनेपर उसने उत्तर दिया कि जो कुछ इस पृथिवी-पर है वह सब मैं उठा सकता हूं॥ २२॥ उसके सामने घास रखा और कहा कि इसको उठाओ, वह उसके पास गया परन्तु सब वेगसे भी वह उसे उठा न सका। इसलिए वह वहांसे लौटा, और उसने देवोंसे कहा कि यह कौन यक्ष है, मैं नहीं जान सकता॥ २३॥

विचारणीय बातें

१. इन १४-२३ मन्त्रोंमें अग्नि और वायुके गर्वको 'यक्ष' वा सूर्यदेवने तोडा है, यही ब्रह्म है, यही पूज्य है। इन मन्त्रोंने पुनः सिद्ध किया कि सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् सब कर्मोंका करनेवाला सूर्य देव ही है। सञ्चित कर्मोंके

पाशोंमें बंधा हुआ मनुष्य, अपनी बांधनेवाली प्रकृति वा शरीरके अनुसार ही कर्म कर सकता है, स्वेच्छासे नहीं! इतनी बात सब मानते हैं, और साथ ही कहते भी जाते हैं कि मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है, इसका विचार होना चाहिये।

२. श्री नाथूलालजी आर्यने वैदिक धर्म पारडीके अक्टोबर, नवम्बर, दिसंबर १९५३ के तीन अंकोंमें ऋषि दयानन्दको कई वार पुरुषार्थवादी लिखा है। मैं पुरुषार्थ वादका विरोधी नहीं, परन्तु जानना चाहता हूं कि क्या केनोपनिषद् भगवद्गीता और वेद पुरुषार्थ वादके पोषक हैं?

आपटेके कोशमें पुरुषार्थ शब्दके अर्थ हैं— १. मनुष्य जीवनके चार मुख्य उद्देश्यों 'धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष' में से कोई एक उद्देश्य। २. मनुष्यकी दौडधूप, मेहनत, श्रम Effort तथा कोशिश, प्रयत्न= Endeavour।

इन अर्थोंमें तो मनुष्य ही क्या पशु-पक्षि भी पुरुषार्थी सिद्ध होते हैं? पेटके लिए प्रत्येक प्राणी पुरुषार्थ करता ही है।

३. केनोपनिषद्के अर्थ निराकारवादी निराकार परमात्मा-परक मानते हैं। परन्तु देखना यह है कि केनोपनिषद्में जिस यक्षको ब्रह्म वा पूजनीय माना गया है उसे वेदने निराकार माना है वा साकार?

ऋषि अथर्वा, कश्यपः, सर्वे वा ऋषयः। देवता विराट्।

यां प्रच्युतामनुयज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त
उपतिष्ठमानाम्। यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति
सा विराड्ऋषयः परमे व्योऽमन्॥ अ० ८।९।८॥

अर्थ— (यां प्रच्युतां अनु) जिस साथ उषाके चले जाने, अस्त होनेके पश्चात् (यज्ञा. प्रच्यवन्ते) सर्व प्रकारके यज्ञ चले जाते, समाप्त होते हैं, और जिस प्रातः उषाके (उपतिष्ठमानम्) आरंभ वा उदय होनेपर पुनः सब यज्ञ (उपतिष्ठन्ते) आरंभ हो जाते हैं। (यस्या) जिस प्रातः उषाके (प्रसवे व्रते) प्रेरक उत्पादक व्रतकी सफलताके निमित्त (यक्षम्) पूजनीय सूर्य (एजति) स्वयं हलचल करता और चराचर जगत्को कराता है, (सा विराड्-ऋषयः) वह प्रकाशक किरणोंवाली उषा (परमे) उच्च आकाशमें उपस्थित (व्योमन्) सूर्य-मन्दिर, सूर्य-बिंबमें रहती है॥ ८॥

भावार्थ— यज्ञ, वा हवन काल प्रात. उषाके आरंभ होनेसे साथ उषाकी समाप्तितक है। मृतक शरीर दहनके सिवा रातको कोई यज्ञ किया नहीं जाता। प्रातः उषा, प्रेरक, उत्पादक, स्वास्थ्यप्रद, रोगनिवारकादि व्रतोंको धारण करती है। इनकी पूर्णताके लिए ही सर्व परमात्मा स्वयं क्रिया करता है और अन्योंसे कराता है। उषाका शीतल स्वास्थ्यप्रद प्रकाश सूर्य-बिंबसे ही उपजता है। इसलिए वेदने उषाको सूर्यपुत्री भी बताया है, देखो पद दिवो दुहिता ऋ० १।११३।७ तथा १।१२४।३ में इनकी पुष्टी ऋ० १०।९०।५ ने तस्मात् विराडजायत इस वाक्यसे की है। यहां सूर्य पुरुषसे विराज= उषाका उत्पन्न होना सिद्ध हो रहा है। मन्त्रका ऋषि अथर्वा, वा कश्यपः दोनों सूर्यके नाम हैं, और देवता 'विराट्'= उषा है। अतः उपरोक्त अर्थ वेदानुकूल है, इसमें संदेह नहीं। आपटेका कोश भी इस अर्थका समर्थक है, यथा–

विराज्= To shine= चमकना, प्रकाशना। To illuminate चमकाना। प्रकाशित करना।

व्योमन्= आकाश, जल, Atemple saered to the sun= *सूर्य मन्दिर*।

ऋषि= A ray of light= प्रकाश किरण।

इतने विवेचनसे सिद्ध हुआ कि यक्ष = ब्रह्म वा पूजनीय वेदके अनुसार साकार सूर्य ही है, निराकार नहीं। और देखिए–

यक्षं पृथिव्यामेकवृत्॥ अ० ८।९।२६॥

अर्थ– (*पृथिव्याम्*) पृथिवीपर (एक वृत्) एक गोल, वर्तुलाकार (यक्षम्) सूर्य [ही पूजनीय] देव है॥ २६॥

टीप– 'वृत्' पदके अनेक अर्थोंमें Round, Circular भी हैं। यह गोलाकार देव साकार सूर्य ही है, निराकार नहीं और देखिए–

अथर्ववेद काण्ड १३ सूक्त ४ में सूर्यके लिए एकवृत्, वा एकवृतं पद १२ वार आए हैं। अब एक पूरा मन्त्र देखिए–

४. वेदके अनुसार जीव सहित कुल ३३ देव हैं, कारण ११ रुद्रोंमें कई लोग १० प्राण और ११ वां जीवात्मा मानते हैं। 'आत्मा' पदसे जीव तथा ईश्वर दोनोंका

बोध होता है। इससे शंका होती है कि क्या जीव और ईश्वर अभिन्न हैं? क्या जिस प्रकार अग्न्यादि देव सूर्यके अंश हैं, उसी प्रकार जीव भी है? केनोपनिषद्ने स्पष्ट बताया कि अग्न्यादि देवोंके समान मनुष्यके मनादिका संचालक भी सूर्य परमात्मा ही है। वेदका आदेश देखिए–

ऋषि अथर्वा क्षुद्र । देवता स्कम्भ, अध्यात्मं वा ।

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे। तस्मिन् छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥ अ० १०।७।३८

अर्थ– (महद् यक्षं) महान सूर्यदेव (भुवनस्य मध्ये) सृष्टिके बीचमें (सलिलस्य पृष्ठे) आकाशकी पीठपर (तपसि) उष्णतामें (क्रान्तम्) क्रान्तिकारक, सबको पीछे हटानेवाला है। (ये उ के च देवाः) जो भी देव हैं वे सबके सब [३३] (तस्मिन् श्रयन्ते) उसीमें रहते हैं, (इव) जिस प्रकार (वृक्षस्य स्कन्धः) वृक्षके तनेके सहारे (परितः शाखाः) चारों ओर शाखाएं होती हैं ॥ ३८ ॥

भावार्थ— जीव सहित ३३ देवोंकी सूर्यमें ऐसी स्थिति है, जैसी शाखाओंकी वृक्षके तनेमें, जिस प्रकार वृक्षसे शाखाएं फूटकर निकलती हैं, उसी प्रकार जीव सहित ३३ देव भी सूर्यसे फटकर निकले हैं। जिस प्रकार शाखाओंका रंगरूप फलना फूलना तनेके आधारसे होता है, उसी प्रकार जीव और देवोंका भी सर्व वैभव सूर्यके कारण होता है। वे तो सूर्यके अंश हैं और सर्वथा अंशीपर आश्रित हैं। वे स्वेच्छासे न कोई कर्म कर सकते हैं न फल पा सकते हैं। वे सर्वथा सूर्यके हाथमें कठपुतलीवत् हैं, वह उनके कृतकर्मोंके अनुसार जैसे चाहे उन्हें घुमाए वा नचाए। जिन्होंने पुरुषार्थी होनेका घमण्ड किया उनका गर्व तोडा गया, यह उपनिषद्ने ही बताया।

मनुष्यका दुःख सुख उसके पिछले जन्मोंमें किए कर्मोंका ही फल है, यह तो एक सत्य सान्त्वना है कि मनुष्य चुपकेसे दुःख सहन करता जाय। अब अच्छे कर्म कर कि आगे सुख मिले, यह एक अच्छे उपदेशसे बढकर नहीं। कारण मनुष्य जो पूर्व जन्मके सञ्चित संस्कारोंसे दबा हुआ है, वह उन्हींके अनुसार ही कर्म करेगा, अन्यथा नहीं!

कई कहते हैं कि योगाभ्यास आदि द्वारा बुरे संस्कारोंको मिटाया जा सकता है, और उनके नाश होनेपर शुभकर्ममें प्रवृत्ति हो सकती है। परन्तु योगाभ्यास करनेकी क्षमता भी यदि शरीर वा मनादिमें पूर्वजन्मके संस्कारोंने रखी हो, तो ही हो सकेगा—यूं ही कैसे?

गायत्रीद्वारा विश्व-विज्ञान

[आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विश्व-विकासके सचित्र रेखांकनके साथ]

लेखक विष्णुदेव सांकलेश्वर पंडित, एम् ए, व्याख्यान दिवाकर, व्याकरणतीर्थ, वेदान्तशास्त्री

पहला प्रकरण

मूलप्रकृति और विश्वसर्जन

इस सृष्टिके मूल कारण स्वरूपसे जडसत्ता और चेतन सत्ता रहती है। इस सृष्टिका कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है, जिसमें जड और चेतनकी सत्ता न हो। जडसत्ता और चेतनसत्ता दोनों अनादि हैं। दोनोंकी सत्ता शाश्वत सनातन है। उस सत्ताका कभी नाश नहीं होता। परा प्रकृतिको ही चेतनसत्ता और अपरा प्रकृतिको ही जडसत्ता कहते है। परा और अपरा एक ही प्रकृति है।

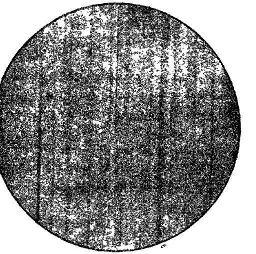
परा चेतनसत्ता

जड सत्ताकी अपेक्षामें चेतनसत्ताका विस्तार अनेक गुण बडा है। चेतनसत्ताको महान, अगाध, गभीर, अनत, अमाप ऐसे एक महा सागरकी उपमा दी जाय तो जिस जडसत्तामें ये कोटि कोटि विश्व समाविष्ट हुए हैं, उस जड सत्ताको नौकाकी उपमा दे सकते हैं। यह चेतन महासागर कितना विशाल, गहन, अमाप और अनन्त होगा, इसकी कल्पना हम कैसे ख्यालमें ला सकें।

प्राचीन ऋषि महर्षियों उत्तम प्रकारके वैज्ञानिक पुरुष थे। अपनी योगशक्तिके बलपर उन योगी मुनियोंने जड-सत्ताके संपूर्ण विस्तारका माप निकाला था। और उसी मापके आधारपर चेतनसत्ताके अमाप विस्तारको समझनेका प्रयत्न भी इन लोगोंने किया था।

सबसे प्रथम उनका कहना यह है कि, 'चेतनसत्ताका कोई आकार नहीं है। उसका कोई माप, कोई गुण, कोई संख्या, कोई विस्तार आदि कुछ भी नहीं है। वह तो गुणातीत, द्वंद्वातीत, त्रिगुणातीत, तुरीयातीत, निराकार, निर्गुण केवल शुद्ध चेतनस्वरूप है। उसको कोई नाम, कोई आकार न होते हुए भी, वह है अर्थात् उसकी सत्ता है'।

प्रश्न— उस चेतनकी सत्ता किस प्रकारसे है ? वे प्राचीन महर्षि प्रवर कहते हैं कि, आपकी समझके लिये मेरा कहना यह है कि,



अखंड- मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।

वह चेतन मडलके आकारसे अखंडस्वरूप है। उस चेतनसत्ताके मडलके बाहर कुछ भी नहीं है। उसके भीतर एक अत्यत छोटे प्रदेशमें अमुक रीतिसे जडसत्ताका रहना होता है, परन्तु वह जडसत्ता अकेली ही नहीं रह सकती। उस चेतनसत्ताके आधारपर ही जडसत्ताका आधार बना है। चेतनसत्तासे रहित होकर जडसत्ताका रहना हो नहीं हो सकता। जैसे अग्निके बिना गर्मी और सूर्यके बिना प्रकाश नहीं होते; वैसे ही चेतनसत्ताके रहित जडसत्ता नहीं है।

यह चेतनसत्ता सर्वत्र सभर भरपूर है; तो भी हमारे ख्यालसे बने हुए आकारोंमेंसे एक भी आकार उसका नहीं है। अपने देश, काल, वस्तु, और दशा आदिके लिये वहां कोई अवकाश नहीं। उसकी लम्बाई, चौडाई, गहराई, ऊंचाई आदि आदि विस्तारकी कोई कल्पना वहां काममें नहीं आती।

हम कहते हैं, कि समुद्रका अन्त नहीं, तो भी आजके वैज्ञानिक और समुद्रकी सफर करनेवाले साहसिक मुसाफरोंने समुद्रका अत खोज निकाला है। कहा जाता है; 'समुद्र गहन गंभीर है। उसकी गहनता गंभीरताका माप भी निकाला गया है' और कहते हैं कि, समुद्रकी साधारण गहराई दोएक मीलकी होती है और गहनसे गहन समुद्रका अंतस्तल पांच मीलतक गहरा है। इस पृथ्वीके एक एक पर्वतकी ऊंचाईका माप नकशेपर आंका जाता है। सर्वोच्च पर्वत हिमालयका सर्वोत्तुंग शिखर भी मानवकी मापसे वश हो गया है। पर्वतकी ज्यादासे ज्यादा ऊँचाई भी पांच मीलकी होती है।

पदार्थके विस्तारको नापनेके लिये हम संख्या और अंकका व्यवहार करते हैं। एकम, दशक, सो, हजार इस रीतिसे **दशवृद्ध्या यथाक्रमम्।** सिद्धान्तके आधारपर दश दशकी गुण गणना बढाते जाय, तो खर्व, पद्म, समुद्र, ओघकी गणन-संज्ञा, संख्या रामायण, पुराण और वेद उपनिषदोंमें पाई जाती है। इस अनंत गुणन तक जानेवाली संख्याको समझनेके लिये एक **विशिष्ट संज्ञा** यहांपर बताते हैं।

एक संख्याका अंक **एक** है, तो दश संख्याका अंक **दो** ही है। उसी क्रमसे शतकका **तीन**, हजारका **चार**, दश हजारका **पांच**, लाखका **छ**, दश लाखका **सात**, करोडका **आठ**, दश करोडका **नव**, शत करोडका **दश**, शंखका **तेरह**, दशसहस्र शंखका **सतरह** दशसहस्र महाशंखका **बावीस**, दशसहस्र महावृन्दका **बत्तीस**, दशसहस्र महाखर्वका **बैंतालीश**, दशसहस्र महापद्मका **बावन**, दशसहस्र महासमुद्रका **बासठ** और दशसहस्र महाओघका **बहत्तर** अंक। ऐसी अंक **संज्ञा** संक्षेप रूपसे बतानेका अभिप्राय अनन्त चेतन महासत्ताका विस्तार आकाशके अवकाशके केन्द्रतक एक हजारके परका अन्तर नापते चले जांय, तो चेतन महासत्ताका विस्तार **पचहत्तर** अंक संज्ञा योजनतक होता है; ऐसी कल्पना करनेका थोडासा ख्याल यहांपर रखा गया है।

अर्थात् इसी रीतिसे अंकके मापके आधारपर हम तुलना करें, तो अनंत चेतनसत्ताका विस्तार **पचहत्तर** तक ले जा सकते हैं। तात्पर्य यह है कि, इस अखंड गोल-मंडलके आकारमें रहनेवाली चेतनसत्ताके गहनता, उच्चतमता विस्तार, लबाई आदि आदि दशों दिशाओंसे फैलकर **पचहत्तर** अंक **योजन**के व्यासमें चेतनसत्ताको रहना है। यह एक मात्र कल्पना है, इसी कल्पनाके आधारपर हम हमारी बुद्धिसे उस चेतनसत्ताका विस्तार और अनंत मापका सामान्य सरल ख्याल ले सकते हैं।

वेदान्त दर्शनकी परिभाषामें जिसको अनंत, अमाप, गहन, गम्भीर, तुरीयातीत, द्वंद्वातीत, त्रिगुणातीत आदि कहते हैं, उसीको गणितकी परिभाषामें समझाना हो, तो एक विशाल गोल आकारका मंडल बना लें और उसके केन्द्रसे उसके वर्तुल तक दशों दिशाओंमें फैली हुई त्रिज्याओंका माप लें, तो वे सब त्रिज्याएं **पचहत्तर** अंकके योजनसे विस्तृत है; ऐसा कह सकते हैं।

यह अनंत विस्तृत चेतन महासागर दशों दिशाओंसे सभर एकरस धनरूप भरपूर है। इसके बाहर कुछ भी नहीं है। वह एक ही है। वह चेतनसत्ता ही पचहत्तर अंक योजनतक सर्व व्यापक विस्तारको लेकर भरी पूरी है।

अपरा प्रकृति जडसत्ता

जब समस्त सृष्टिका महाप्रलय हो जाता है, तब **जड सत्ता** चेतनसत्तामें विलीन हो जाती है अर्थात् उस जड सत्ताकी सत्ता चेतनसत्तासे अलगसी मालूम नहीं होती। चेतनसत्तामें वह ऐसी विलीन हो जाती है कि वह जडसत्ता चेतनसत्तासी एक रूप बन जाती है।

दृष्टांतके रूपसे अगर उसको समझना हो, तो समुद्र और नौकाका दृष्टांत हमारे सामने हैं। महासागरमें दूर सुदूर क्षितिजकी ओर कोई एक नौका चली जाय, तो हम कहेंगे कि नौका विलीन हो गई; महासागरमें मिल गई उसका अलग अस्तित्व सत्ता हमारे दर्शनकी मर्यादाके परे हो गया। वह महासमुद्र रूप बन गई। परन्तु हम जानते हैं और सबका यह अनुभव है कि; हमारी दृष्टि

मर्यादाके पार नौका हो जानेसे नौका महासागरमें डूब नहीं जाती उस नौकाका किसी प्रकारसे लोप नहीं होता। उसकी सत्ता मीट जाती नहीं, वह नौका दूर भी बनी बनाई रहती है। ठीक यह दृष्टान्त हम जडसत्ताके चेतन-सत्तामें विलीन होनेके लिये रख सकते हैं और तुलना कर सकते हैं कि, यह जडसत्तारूपी नौका चेतनसत्तारूप महा सागरमें विलीन हो गई है। जडसत्ताकी इस दशाको दार्श निक परिभाषाके रूपमें यही कहा जाता है कि जडसत्ताकी यह विलीनदशा साम्यावस्था, लयावस्था या निद्रादशा है।

१ से ५४ अंक योजनका विस्तार

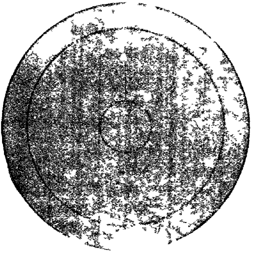
ऊपर कहा गया है, कि पचहत्तर अंक योजनके विस्तारमें जो अखंड मंडलाकार चेतनसत्ता है उसमें जडसत्ताका विस्तार एक नौका मात्र है, परन्तु इससे हमें यह स्पष्ट ख्याल नहीं आ सकता कि जडसत्ताका विस्तार कितना है। सागर और नौका केवल उपमा बन सकती है। गणितकी परिभाषामें पचहत्तर अंक योजन वाली चेतनसत्ताके विस्तारका विभाजन करने चलें (जो केवल हमारी बुद्धि मर्यादाकी सर्वोच्च दीर्घदर्शी कल्पना ही है) तो प्रकृति मंडलके मध्यवर्ती एक अंकसे ५४ अंक योजनतक विस्तृत चेतनसत्ताका अवकाश गहन गंभीर है। महाप्रलयकी अवस्थामें वह चेतनसत्ता श्यामस्वरूप शून्यसी बनी रही है। वह विशाल अवकाश मानो गूढतम अन्धकारसा बना हुआ है। एक अंकसे ५४ अंक योजनतक विस्तृत पटल स्वरूपसे चेतनसत्ता फैलाकर पडी हुई है।

५४ से ७० योजनका विस्तार

साम्यावस्था या लयावस्थाकी जडसत्ता चेतनसत्ताके भीतर विस्तृतरूपसे जो पडी है, उसका विस्तार ५४ अंक योजनसे ७० अंक योजनतक है अर्थात् यह जडसत्ता प्रकृति मंडल गोल आकारमें १६ अंक योजनके अवकाशमें फैली हुई है।

७० से ७५ योजनका विस्तार

७० अंक योजनसे ७५ अंक योजनतक प्रकृति मंडलकी केवल जडसत्ता रहित चेतनसत्ताका अवकाश है, जिसको दार्शनिक परिभाषामें एक, अद्वैत, नाम गुण और रूपसे रहित तुरीयातीत चेतनसत्ता कहते हैं। ये पांच अंकोंके विस्तारमें रहनेवाली चेतनसत्ता कोई भी क्रिया नहीं करती। वह सघन भरपूर है। सृष्टिके प्रलयमें या सृष्टिके सर्जनमें वह सदा शाश्वत एक अविकृत रूप रहती है। इस चेतन सत्ताका जडसत्ताके साथ कोई भी प्रकारका सृष्टि, स्थिति या संहारके कार्यका कोई संबंध नहीं है। उसमें कोई कहते कुछ फरक नहीं होता।



३ प्रकृति मंडलकी साम्यावस्था

जो जडसत्ता चेतनसत्तामें विलीन बनकर ५४ से ७० योजनके १६ अंक योजन विस्तारमें रहती है वही जडसत्ता सृष्टिके सर्जनकी प्रारम्भ अवस्थामें धीरे धीरे स्वयं ही प्रकृतिके रूपमें अव्यक्तसे व्यक्त होने लगती है।

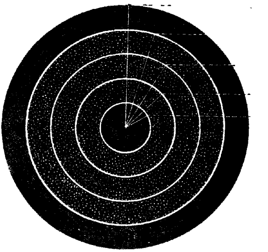
पहले यह स्पष्ट हुआ है कि जडसत्ता और चेतनसत्ता दोनों ही प्रकृति है। जडसत्ताको अपरा प्रकृति और चेतन सत्ताको परा प्रकृति कहते हैं। परा प्रकृति और अपरा प्रकृति ही प्रकृतिमंडल है।

अब वेदान्त और सांख्यकी परिभाषाको अपनाकर, यही प्रकृतिके परा और अपराको दूसरे नाम दिये जाते हैं जो प्रसिद्ध हैं और समझनेके लिये सरल हैं—

प्रथम क्रम—

चेतनताका प्रथम दर्शन

सोलह लक्ष योजनके विस्तारमें विलीन जड सत्ता जब अव्यक्तसे व्यक्त होने लगती है तब वह जडसत्ता अपने भीतरकी चेतनसत्ताको आवृत करनेमें लग जाती है। इसीलिये उस जडसत्ताको प्रकृति कहते हैं और उसमें आवृत होनेवाली चेतनसत्ताको पुरुष कहते हैं। जो पुरुष रूपसे चेतनसत्ता है; वह स्वयं निष्क्रिय है, गुणरहित है, परन्तु उसीका सानिध्य होनेसे अर्थात् उसकी केवल सत्तामात्रसे ही प्रकृतिमें= १६ ' योजनकी षोडशी प्रकृतिमें स्वय ही स्वभावके वशीभूत होकर-प्रकृतिकी जडसत्तामें चेतनता आने लगती है। जडसत्तामें इस रीतिसे चेतनता आना ही सृष्टिसर्जन कार्यका प्रथम क्रम है। जैसे महासागरके क्षितिजपर दूर कोई बडी नौका आ रही हो जो दूरबीनके द्वारा भी अनुमानके आधारपर ही केवल बिंदुके रूपसे मानी जाती हो, वैसे ही षोडशी प्रकृतिमें चेतनता आनेका कार्य सर्व प्रथम सृष्टिसर्जनका प्रारम्भमात्र है। वेदान्त या सांख्यकी परिभाषामें कहें, तो इतना कहेंगे कि जब प्रकृति अपनी साम्यावस्था, गाढ निद्राकी अवस्थाको छोडना चाहती है। उस प्रकृतिको अपनी सानिध्यमें रहनेवाले पुरुषको वेष्टित करना है; और उसीके फलस्वरूप प्रकृतिमंडलमें चेतनता आती है॥



दूसरा क्रम—

प्रकृतिके तीन मंडल

इसके बाद प्रकृतिके स्वभावसिद्ध तमोगुण, रजोगुण और सत्वगुणके अप्रगट परमाणु चेतनताके कारण प्रगट होने लगते हैं। प्रकृतिके मंडलमें ये तीन गुणवाले परमाणु अपने अपने मंडलमें प्रगट होनेके कारण, तीन मंडल बनाते हैं। एक एक मंडलके अवकाशका विस्तार सामान्य अनुमानसे कहें तो एक लाख योजनका होता है, अर्थात् ५४ " से ६० " तक विस्तृत मंडलमें तमोगुण, ६१ " से ६५" तक विस्तृत मंडलमें रजोगुण और ६६" से ७०" तक विस्तृत मंडलमें सत्वगुण दशों दिशाओंमें गोल आकारके अवकाशमें फैलकर प्रगट होने लगते हैं।

चेतनसत्ताके विस्तारमें तीन गुणोंको धारण करनेवाली प्रकृति जिस समय साम्यावस्थामें रही थी; उस समयमें वह अज्ञेय स्वरूपमें थी अर्थात् उसका स्वरूप किसीकी समझमें आवें ऐसा न था। वह अव्यक्त थी अर्थात् उसके तीन गुणोंके रूप, रंग, आकार आदि कुछ भी प्रगट न थे। वह प्रकृति चेतनसत्ताके साथ एकरूप बनकर पडी थी। वेदान्तकी परिभाषामें जिसको परब्रह्म, परमधाम, परमपवित्र, परमपद, परमगति आदि कहते हैं, वह यही साम्यावस्थामें रहनेवाली प्रकृति है अर्थात् प्रकृतिको ही परब्रह्म आदि कहते हैं। चेतनसत्ताके ये नाम नहीं हैं, यह स्पष्टरूपसे समझना आवश्यक है। ये नाम जडसत्ता (matter) के हैं।

जडसत्ता- प्रकृतिकी साम्यावस्थाके समयमें ये तीनों गुण वाले परमाणु गति, स्फूर्ति और हलन-चलनसे रहित होकर सुषुप्त दशामें पडे रहते हैं। वे केवल नाममात्रकी सत्तासे जडसत्तामें अन्तर्गत जडसत्तास्वरूप धारण किये होते हैं और जडसत्ता चेतनवत् बनकर रहती है।

[क्रमशः]

भारतीय संस्कृतिके अनुसार
भारतीय संविधानकी समालोचना

(लेखक श्री प० रामावतारजी, विद्याभास्कर)

[गताङ्कसे आगे]

तात्कालिक प्रतिकार +

जिनको सरकारसे इस प्रकारके निराशाजनक उत्तर पानेका अवसर मिला होगा वे तो अवश्य ही इस प्रतिकार की आवश्यकता तथा सफलताको समझ लेंगे और अवश्य ही इस शासनसुधारक योजनामें अपना सहयोग देंगे। परन्तु जिनको सरकारसे इस प्रकारका उत्तरदायित्वहीन पत्रव्यवहार पानेका कटु अनुभव नहीं हुआ वे भी अपनी स्वतन्त्र विचारशक्तिसे सरकारकी देशद्रोहमूलक पत्रव्यवहार नीतिकी उस धृष्टताको जिसे वह समय समयपर लोगोंके साथ व्यवहारमें लाती है, जिसके दो सप्रमाण उदाहरण इस ग्रन्थके अन्तमें उल्लिखित हैं, अपने ही न्यायाधिकारपर आक्रमण मानकर उसकी इस दुर्नीतिका विरोध करना अपना अनिवार्य राष्ट्रीय कर्तव्य मानें। अर्थात् वे भी इस स्वाभाविक सगठनमें, जिसमें दूसरे साथीकी आवश्यकता नहीं है, सम्मिलित होकर देशसेवाका सच्चा सन्तोष प्राप्त करें। वे भी हमारी योजनाके अनुसार एक पोस्टकार्ड डाल कर सरकारी पत्रव्यवहार नीतिकी भर्त्सना करें और उसे उसको सुधारनेके लिये विवश करें।

हमारे देशवासियोंकी जिस उदासीनताने इस सरकारी धृष्टताको जो कि सरकारी पत्रव्यवहारोंमें प्रकट हो रही है, जन्म दिया है, उस उदासीनताको भी त्यागना देशवासियोंका ही कर्तव्य है और अपनी उदासीनतासे उत्पादित शासकीय धृष्टताको छुड़वाना भी उन्हींका उत्तरदायित्व है। दूसरे शब्दोंमें देशवासियोंको ही तो अपनी उदासीनता छोड़नी है और उन्हींको शासकोंकी यह धृष्टता छुड़वानी है। अपनी उदासीनताको छोड़ने तथा शासकोंकी धृष्टता छुड़ानेका यही एकमात्र मार्ग है जो हमने ऊपर उपर्युक्त भाषामें पत्र लिखनेके रूपमें बताया है। सरकारके अत्याचारके सम्बन्धमें पत्रकारोंकी अविरोधनीति देशभरमें नपुंसकताका प्रचार करनेवाली बन गई है और अत्याचारी सरकारका दुःसाहस बढ़ाती है।

यह बड़े दुःखकी बात है कि जनता इतनी नपुंसक हो चुकी है कि वह किसी और पर हुये अन्यायोंका विरोध करनेसे भी डरती है। उसके इस अविरोधसे उसकी यह भावना प्रकट होती है कि हम पर तो अन्याय नहीं हो रहा है, इतने ही में हमारा स्वार्थ तो सुरक्षित है। जनता अपने ऊपर हुये अन्यायके विषयमें बड़े दूषित ढंगसे सोचती है कि यदि अकेले हम पर कोई सरकारी अत्याचार हो भी जाय तो भी हमें उसे सह लेना चाहिये। यदि हम विरोध करेंगे तो सरकारी कर्मचारी हमारे विरोधी बन जायेंगे और हमसे बदला लेनेकी भावनासे हमें तंग करेंगे। इनके बदलेका शिकार बननेसे बचनेके लिये सरकारी अन्यायोंका विरोध न करनेमें ही हमारा कल्याण है। हम जनताको सावधान किये देते हैं यदि वह अन्यायोंके विरोधसे बचेगी तो उस पर अन्यायोंकी बाढ़ आ जावेगी। यदि हमारे देशवासी सरकारके सिरपर लाखों और करोड़ोंकी संख्यामें उक्त आशयवाले पोस्टकार्डोंकी वर्षा करने लगें तो इसका सामूहिक प्रभाव शासकीय घमण्डको चूर्ण करनेवाला बन जायगा। शासक लोग अंग्रेजदत्त राज्याधिकारके उपहारमें मिले दर्प और नशेमें इस सच्चाईको भूल रहे हैं कि शासन-व्यवस्थाको स्वस्थ चिरजीवी और सफल बनाये रखनेके लिये प्रजाकी सम्मतिका अपने पक्षमें होनेका बहुत बड़ा मूल्य है। प्रजाकी सहानुभूति शासनव्यवस्थाके जीवनके लिये भौतिक शक्तियों और विशाल सेनाओंसे भी अधिक शक्ति रखती है। प्रजाकी सम्मति सर्व शक्तिमती होती है। इन लोगोंने देशका शासनभार प्रजाकी इसी सर्वशक्तिमती सम्मतिकी दुहाई देकर प्रजातन्त्रके नामसे सभाला था। परन्तु अब ये लोग प्रजाकी सम्मति या उसके अनुमोदनके महत्त्वको भूल गये हैं। ये अपनी अदूरगामिनी क्षुद्र दृष्टिसे उसे

+ ' तात्कालिक प्रतिकार ' शीर्षकका कुछ अंश अक्टूबर ५४ के अङ्कमें प्रकाशित हुआ है।

प्रभावशाली, ओजस्वी, अजय्य, अप्रकम्प्य, अपराभवनीय, आत्मसम्मानी बनानेमें अपना व्यक्तिगत कल्याण न समझ कर उसे पराभवसहिष्णु मानवकी अपेक्षा न करनेवाली भयकातर तथा आत्मसम्मानहीन बनाये रखनेमें ही अपने पदोंकी सुरक्षा समझकर, कितनी बडी राष्ट्रघाती भूल कर रहे हैं उसकी कल्पना करनेसे भी देशके भविष्यके संबन्धमें भय और शंका उत्पन्न होती है। संगीनसे शासन करनेके जिस डरने हमारे देशको अंग्रेजी अत्याचारका आखेट बनाया था, यदि इनके पास कोई दूरगामी चिन्ता होती तो इन्हें केवल इसी कामके लिये एक अलग पंचसाला योजना (स्कीम) बनाकर सबसे पहले अपने ऊपर किसीको संगीनसे शासन कर लेने देनेकी स्थितिको देशमेंसे कान पकडकर बाहर कर देना चाहिये था और इन विगत सात ही वर्षोंमें देशको एक अजेय राष्ट्रका रूप दे चुकना चाहिये था। परन्तु यह सब नहीं किया गया। पूतके पांव पालनेमें ही पहचाने जाते हैं, इस लोकोक्तिके अनुसार ये लोग राष्ट्रके साथ आगे को कैसा बरताव करना चाहते हैं इसका समस्त आभास इन गत सात वर्षोंमें मिल चुका है। ये देशकी भौतिक उन्नतिकी चाहे जितनी डींग मारें हम तो अपने देशको देशके मनको ही देश मानने तथा उसीके अनुसार देशके राष्ट्रीय कार्यक्रम बनानेकी सम्मति देना चाहते हैं।

भूमि देश नहीं है। देशका मन ही देश है। देशका मन अरक्षित, निर्बल, कायर, पराभवसहिष्णु बना तो इन लोगोंकी सारी कमाई तीन कौडीकी भी नहीं रहेगी। आपने देखा है कि जो अज्ञानी माता-पिता अपने पुत्रोंको सम्पत्ति रक्षाकेयोग्य संयमी न बनाकर उन्हें विपुल संपत्ति दे कर जाते हैं वे उस सब संपत्तिको कुछ ही कालमें स्वाहा करके हाथ झाडकर बैठ जाते हैं। ठीक यही अवस्था हमारे देशकी तब हो जायगी जब देशको सच्चा वीर, गुणी, स्वाभिमानी, मनस्वी, आत्मरक्षा समर्थ नहीं बनाया जायगा। तब इनकी तथाकथित उपार्जित संपत्ति, हमारे उन आक्रमकोंके काम आयगी जो हमें राज्यविस्तार या व्यापार विस्तारके नामसे दिनरात लूटा करेंगे। इनकी देशके वास्तव कल्याणके संबन्धमें उपेक्षाका यही कारण है कि ये अपने किसी पुरुषार्थ या भुज बलसे राज्य न पाकर बिल्लीके भागसे टूटे छींकेकी भांति अकस्मात् राज पा गये हैं। राजकाजमें जिस ढंगसे इनके पैर पड रहे हैं उन्हें देखकर प्रतीत होता है कि 'इनमें तो शताब्दियोंमें भी राजबुद्धि नहीं आनी है। ये लोग तो अपनी दुश्चिन्ता, अदूरदृष्टि, अज्ञता तथा स्वार्थसे भारतके उस डरको हटानेका कोई कार्यक्रम नहीं बना पाये, जिस डरके सहारेसे अंग्रेज यहां शासन कर रहा था। पाठक देखें कि भारतीय डरको हटानेके सम्बन्धमें हमारे नेताओंकी मति कैसी मारी गई है? और ये लोग विष्णुशर्माके पंचतन्त्रवाली यद्भविष्य (जो होगा होता रहेगा और हम भुगतते रहेंगे) ऐसा विचार रखनेवाली मछलीके समान कैसे निश्चिन्त बैठे हैं? मानो इस सृष्टिसे सब आततायी मर गये हों और मानो किसीने इन्हें इनकी राष्ट्रीय भूलें सदा क्षमा करते रहनेकी गारण्टी देदी हो। दैवकी फटकार इसीको तो कहते हैं। ये लोग इन्हें राजदिलानेवाली प्रजाकी सम्मतिरूपी देशकी उस सच्ची शक्तिको, जिस शक्तिको इन्हें अपनी ही मातृशक्तिके रूपमें देखकर उसे माताकी भांति श्रद्धा और आदरसे पूजकर प्रसन्न होना तथा उसे जहांतक बढाया जाना सम्भव था, अबतक कभीका बढा चुकना चाहिये था, अपने राजनैतिक गुरु अंग्रेजोंके ही भांति पशुबलसे अपने आप भी पददलित कर रहे हैं और सरकारी दफतरोंके चपरासियोंतकसे अपमानित कराते चले जा रहे हैं। हमारे देशवासियो! सोचो तो सही, यह इन लोगोंका कैसा राष्ट्रघाती व्यामोह है? और इस संबन्धमें आप लोगोंका भी कुछ कर्तव्य है या नहीं?

स्वाभिमान ही स्वतन्त्रराष्ट्रोंका मूलधन होता है। स्वतन्त्रराष्ट्रोंका स्वाभिमान ही उनकी सच्ची शक्ति होती है। हम भौतिक शक्तिको शक्ति माननेकी बातका डंकेकी चोट खंडन करना चाहते हैं। 'भौतिक शक्ति शक्ति है' यह एक संसारव्यापी कुविश्वास है। संसारसे इस कुविश्वासका अन्त होजानेमें ही संसारका कल्याण है। इस कुविश्वासने आजके मानव समाजको नरककी लपटोंमें झुलस डाला है। संसारको जानना चाहिये कि भौतिक शक्ति, शक्ति नहीं है। मानसिक शक्ति ही शक्ति होती है। भौतिक शक्ति तो मानसिक शक्तिकी अनुचारिणी दासी बनकर रहा करती है। ग्रन्थ बढजानेके डरसे इस प्रसंगको आगे न बढने देकर अपने प्रकृत विषयपर आते हैं। स्वतन्त्रराष्ट्रका स्वाभिमान ही वह शक्ति है जो शासकोंको भौतिक शक्ति दे भी सकती है

और उन्हें अयोग्य पाये तो उनसे छीन भी सकती है। भौतिक शक्तिमें शासन करनेकी योग्यता नहीं होती। स्वतन्त्रराष्ट्रकी मानसिक शक्ति या स्वतन्त्रराष्ट्रका स्वाभिमान ही राष्ट्रका सच्चा धन है। स्वतन्त्रराष्ट्रका स्वाभिमान या उसकी मानसिक शक्ति ही भौतिक शक्तिको जन्म देनेवाली, भौतिक शक्तिका सदुपयोग करनेवाली तथा दुरुपयोगको रोकनेवाली सच्ची शक्ति है। इस विवेचनसे देशकी मानसिक शक्ति या उसके स्वाभिमानकी महत्ता पाठकोंके ध्यानमें आगई होगी। जब हमारे देशका प्रत्येक पठित नागरिक अपनी इस मानसिक शक्ति या स्वाभिमानसे प्रेरणा पाकर ऊपरवाली भाषामें स्वतन्त्र रीतिसे उपरिलिखित अधिकारियोंके पास एक एक पोस्टकार्ड लिखकर वर्तमान विपथगामी शासकोंके दम्भपर प्रत्यक्ष आघात या आक्रमण करेगा तब यह आक्रमण राज्यव्यवस्थाके व्याधिग्रस्त निर्बल भागपर सम्मिलित घातक चोट करेगा और उसे सुधारे बिना नहीं मानेगा।

यह हम जनताके हाथोंमें एक ऐसा अव्यर्थ रामबाण हथियार पकडा रहे हैं जो केवल तीन तीन पैसोंसे सम्पूर्ण राज्यव्यवस्थाकी कर्तव्यहीनतावाले दूषित अंगको काट फेंकेगा और देशमें राष्ट्रकी दूषित राज्यव्यवस्थाको राष्ट्रके ही बलसे सुधरवानेकी एक अच्छी परम्परा प्रवाहित कर डालेगा। फिर तो हम राष्ट्रकी प्रत्येक राष्ट्रीय व्याधिको इसी उपायसे सुधार लिया करेंगे। जबतक जनता हमारे इस पाशुपत अस्त्रका प्रयोग नहीं करेगी, तबतक वह आजकी भांति राज्यव्यवस्थासे उदासीन भाग्यभरोसे बनी रहेगी, केवल चौपाली गोष्ठियोंमें ही बैठकर देशके कुशासनको कोसनेमें ही अपने राष्ट्रीय कर्तव्यकी इति माना करेगी, और कुशासनको सुधार सकनेवाली आत्मशक्तिको व्यर्थ खोती रहेगी। जनता सच्चे मनसे चाहे तो क्या कुछ नहीं कर सकती। जबतक जनता अपने स्वाभिमानी हाथोंसे दूषित राज्यव्यवस्थाके ऊपर हमारा यह पाशुपत अस्त्र नहीं चलायेगी, तबतक भारतीय शासन प्रबन्धमेंसे अंग्रेजोंकी डाली हुई आहंकारिक मनोवृत्ति हटायी नहीं जासकेगी। हमारी इस पाशुपत शक्तिका प्रयोग करके तो प्रत्येक भारतवासी अपने घर बैठकर संविधानदत्त अधिकारकी सीमामें रहकर अपने देशके शासनको तीन पैसेमें अनायास सुधार सकता है।

लोकमतके दबावसे सरकारी पत्रव्यवहारनीतिको सुधरवानेके संबन्धमें इस योजनामें सहयोग देना राष्ट्रके प्रत्येक पत्रकारका भी कर्तव्य है। उन्हें भी चाहिये कि वे भी प्रत्येक अन्यायको सुधरवानेके उद्देश्यसे सरकारके ऊपर अपनी दूषित पत्रव्यवहारनीतिको सुधरवानेका दबाव डालें। हमारे देशके पत्रकार सरकारके डरसे सरकारी अन्यायकी घटनाको प्रकाशित करनेसे बचते और ऊपरवाले मनसे यह मिथ्या प्रचार करते हैं कि देशमें न्यायसे शासन हो रहा है। पत्रकारोंकी कर्तव्यहीनता भी देशमें अत्याचार होने और सरकारका संशोधन न होनेका एक विशिष्ट कारण बनी हुई है। यदि हमारे देशके पत्रकार अधिकारारूढ सरकारकी चाटुकारिता (चापलूसी) न करके देशमें होनेवाले सरकारी अन्यायोंकी घटनाओंको सच्चे रूपमें प्रकाशित कर दिया करें तो सरकारका भी सुधार हो जाय तथा राज्यव्यवस्थामें प्रजातंत्रकी मौलिक सिद्धान्त क्रियात्मकरूप धारण करके प्रकट हो जाय। परन्तु खेद है कि हमारे देशके पत्रकारोंने अपने आपको देशद्रोहियोंके हाथोंमें बेचकर देशद्रोहको ही अपना स्वार्थ साधक समझ लिया है। सरकारके अत्याचारके संबन्धमें पत्रकारोंकी अविरोधनीति देशभरमें नपुंसकताका प्रचार करनेवाली बन गई है और अत्याचारी सरकारका दुःसाहस बढा रही है।

समाचारपत्रोंका कर्तव्य है कि वे देशको देशहितकारी समाचार देते रहकर उसे जगायें, कर्तव्यकी प्रेरणा दें और उसे एकताके बन्धनमें बांधे रखकर शक्तिमान बनाये रहें। समाचारपत्र जनताके तो "प्रतिनिधि" और राज्यव्यवस्थाको सुमार्ग सुझानेवाले "सचिव" होते हैं। प्रजातन्त्र राज्यव्यवस्थाका कर्तव्य है कि वह समाचारपत्रोंके मुखसे जनमतके रूपमें जनताकी हृदयध्वनि सुनें और उसका अनुगमन करें। समाचारपत्र राज्यव्यवस्थाके ऊपर जनमतका दबाव डालकर उसे सुपथपर रखनेके उत्तरदायी हैं। समाचारपत्र राज्यव्यवस्थाकी मार्गदर्शक वाणी तथा आंख कहाते हैं। प्रजातंत्रिक शासन व्यवस्था समाचार पत्रोंकी सम्मतियोंसे लाभ उठाकर ही प्रजाका विश्वास पात्र बन सकती हैं। यदि शासक लोग प्रजातंत्रका दुरुपयोग करके प्रजाका अहित कर रहे हों तो समझना चाहिये कि राज्यव्यवस्था पर जनमतका प्रभाव नहीं पड रहा है। यदि शासक

लोगोंके अन्यायी अत्याचारी और उद्दण्ड होनेपर भी उनकी उद्दण्डता, अन्यायपरायणता तथा अत्याचारके समाचार जनमतकी अदालतमें निन्दित तथा भर्त्सित न होते रहें तो इनके पाप करनेके दुस्साहस दिनदूने रात चौगने बढते चले जाते हैं। समाचारपत्र ही जनमतके न्यायालय हैं। हमारे देशके समाचार पत्र सोचें कि उनके पदका कितना गम्भीर, कितना दूरगामी और कितना व्यापक उत्तरदायित्व है तथा आज वे उसका कितनी कृतघ्नताके साथ हनन कर रहे हैं ? आज जनमतके न्यायालय ये समाचार पत्र स्वार्थोंका खप्पर लिये सरकारी द्वारोंपर खडे हैं और उसकी कृपा-भिक्षा मांग रहे हैं। आजके भारतीय समाचारपत्र राजरोषसे डरकर जनमतके सम्बन्धमें कर्तव्यसे भ्रष्ट होकर शासकीय अन्यायोंकी घटनाओंको या तो छापते ही नहीं हैं, या सच्ची घटनाओंको छिपा लेनेवाले कृत्रिम समाचारोंका रूप देकर छापते हैं। इनकी इस मनोवृत्तिका यही अर्थ हो सकता है कि ये लोग शासकोंको सुधरने देना नहीं चाहते और चाहते हैं कि जनतापर इसी प्रकार अन्याय होते रहें। समाचार पत्रोंकी यह मनोदशा इनका देशद्रोह है। स्पष्ट शब्दोंमें अपनी कर्तव्यहीनतासे शासकीय अन्यायोंको प्रोत्साहन देनेवाले पत्रकारोंको शासकोंका तो क्रीत-दास तथा जनताका कृतघ्न कहना चाहिये। ओ हमारे देशके पत्रकारो ! आप लोग जनताके हाथोंमें अपने पत्र बेच बेचकर उसीसे अपना भरणपोषण प्राप्त करते हो। इसलिये आप अपनी अन्नदात्री जनताके अधिकारोंकी रक्षाके संबन्धमें अपना कुछ कर्तव्य समझते हो या नहीं ? यदि समझते हो तो आप जनतापर होनेवाले शासकीय अत्याचारोंमें सहायक क्यों बनते हो ?

पत्रकारोंको राजकीय अन्यायोंके विरोधके लिये बाधित करनेवाला उपाय।

हम इसी संबन्धमें अपने देश भाइयोंसे पूछना चाहते हैं कि आप लोग ऐसे हीन समाचार पत्रोंको क्यों खरीदते हो ? जो आपपर हुये सरकारी अत्याचारोंकी घटनाओंपर सम्पादकीय लेख या टिप्पणी लिखकर सरकारकी भर्त्सना करना तो दूर रहा, जो आपकी भेजी घटनाओंको ज्योंका त्यों छापनेसे भी जान बूझकर बचते हैं।

हम मानते हैं कि समाचारपत्र जगत्पर राजरोषका भय रहता है। हम मानते हैं कि प्रजातंत्री कहलानेवाली हमारी राज्य व्यवस्थाकी कुटिलताने सरकारी पापोंका भंडाफोड करनेवाले समाचारपत्रोंके मुखपर ताले डाल रखे हैं। हम मानते हैं आपके इस पापमें राज्यव्यवस्था भी अपराधिनी है। परन्तु राज्यव्यवस्थाके भी आपके अपराधमें सम्मिलित हो जाने मात्रसे आप लोगोंका उत्तरदायित्व घट या समाप्त नहीं हो जाता। ब्रिटिश कालमें भी तो आप ही लोग थे जो सब प्रकारके झंझट झेलकर भी राजकीय पापोंका विरोध करनेसे मुख नहीं मोडते थे और अपने पदकी मर्यादा बनाये हुये थे। आप तो लोकमतके प्रहरी हैं। प्रहरीकी तो नौकरी ही पिटनेकी संभावनाओंसे संकीर्ण है। जो पिटनेसे डरे वह इस नौकरीको करे ही क्यों ? राजरोषसे डरनेवाला सम्पादक अपने लिये वैतसी (नदीकी बाढसे झुक जानेवाले वेत कीसी) वृत्तिवाला स्वाभिमानहीन निःसंशय जीवन पथ क्यों न ढूंढे ? पदके अनुरूप कर्तव्य करनेमें ही मानवकी शोभा है। पत्रकारका पद ही ऐसा है कि उसके साथ राष्ट्रसम्मानरक्षाका महान् उत्तरदायित्व लगा हुआ है। पत्रकार राष्ट्रका संकटमोचन है। पत्रकार राज्य-व्यवस्था रूपी रोगीका राजवैद्य है। उसे शासकीय सान्नि-पातिक ज्वरसे उन्मत्त राजशक्तिरूपी रोगीको होकर उसे उसके न चाहनेपर भी राष्ट्र कल्याणकी दृष्टिसे बलपूर्वक कडवी औषध पिलानेका महान् कर्तव्य करना पडता है और प्रजाको राजकीय दुष्कर्मोंके परिणामोंसे बचाना पडता है। पत्रकारका पद संकटकी संभावनाओंसे परिपूर्ण है। कर्तव्यकी इस जटिलताके कारण सच्चे पत्रकारको सदा ही संकटकालीन स्थितिमें जीवन बिताना पडता है। स्वनामधन्य स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी सच्ची पत्रकारिताके ज्वलन्त उदाहरण हैं। संकटकालीन जीवन बितानेमें ही पत्रकारकी महत्ता और शोभा है।

जैसे मणि शाणपर रगडा खाये बिना शोभा नहीं देती इसी प्रकार पत्रकार राजरोषकी आगमें तपे बिना उज्ज्वल रूप धारण नहीं करता। राजरोषका पात्र बने बिना पत्रकार पत्रकार नहीं बनता। राजरोष ही पत्रकारकी श्रेष्ठताका प्रमाणपत्र है। पत्रकार कभी भी निष्कंटक नहीं है। पत्र-कार देशसे अभिन्न बनकर रहता है। वह देशके किसी भी व्यक्तिकी विपत्तिको अपनी विपत्ति मानकर उसका प्रतिकार करता है। उससे देशके किसी भी विपद्ग्रस्तको देखकर चैनसे नहीं बैठा जाता। वह अबतक अपनी लेखनीके

अभ्याससे उस विपक्षका विपद्मोचन नहीं करा लेता तब तक उसे ठंडा सांस नहीं आता। इसलिये इस व्यवसायमें वे ही हाथ डालें जो देशसेवामें रस ले सकें और अपने देशको स्वाभिमानोन्नत देखना चाहें। यदि वे इस सेवामें अनिवार्य रूपसे आनेवाले सकटोंसे घबराते हों तो वे पनवाडी जैसा कोई निरापद व्यवसाय अपनाकर इस पदको किन्हीं योग्य सेवकोंके लिये रिक्त कर दें। यदि ऐसा करनेसे हमारा साराका सारा ही समाचारजगत् सूना हो जाय तो भी देशकी कोई हानि नहीं होगी। जैसे आज हमारे देशमें राज्यव्यवस्थाको सन्मार्गपर रखनेवाले सद्गुरुकी आवश्यकता है, इसी प्रकार आजके पत्रकारको भी योग्य शिक्षा देनेकी आवश्यकता है। यदि जनता सावधान हो तो वही पत्रकारका भी योग्य शिक्षक हो सकती है। इस दूषित पत्रकार मनोवृत्तिको सुधारनेकी शक्ति जनताके हाथोंमें है। उसे चाहिये कि वह इस प्रकारके समाचारपत्र मोल लेना छोड दे तथा अन्य भी समस्त सभव उपायोंसे उनका तबतक बहिष्कार करे जबतकके अपना यह अन्याय विरोधी कर्तव्य पालनेको पूर्ण सन्नद्ध न हो जायें। यदि जनता ऐसे समाचारपत्र पढना नहीं छोडेगी तो वह जान ले कि वह अपने ही विनाशमें सहायक बनेगी। जबतक जनता इस वास्तविकताको नहीं समझेगी और उन्मार्गी पत्रकारोंपर उन्हें न पढना और न खरीदना रूपी अपना दण्डप्रयोग नहीं करेगी तबतक वे क्यो तो जनमतसे डर मानेंगे और क्यों सुधरेंगे? इसलिये पत्रकारोंको सुधारनेका यह उत्तरदायित्व भी जनताका ही है कि वह उनपर बहिष्कारका दबाव डालकर उनकी बुद्धि ठिकाने रक्खे, उन्हें देशद्रोही शासकोंका सहयोग करनेसे रोके तथा उन्हें देशका सहयोगी बननेपर विवश करे।

व्यवस्थापिका सदस्योंको शासकीय अत्याचारोंको सुधरवानेके लिये बाधित करनेवाले उपाय।

जो मनोवृत्ति पत्रकारोंको देशद्रोही बना रही है उसीसे व्यवस्थापिका परिषदोंके सदस्य भी जनमतकी सम्मति तथा उसके कल्याणकी उपेक्षा करके अपने उत्तरदायित्वका दुरुपयोग कर रहे हैं। लोकप्रतिनिधियोंका तो एकमात्र यही कर्तव्य होता है कि वे एक चतुर सारथीके समान जनताकी आवश्यकता तथा इच्छाको राज्यव्यवस्थामें बलवती बनाये रहें। उसे सुपथपर चलनेके लिये विवश करके रक्खें और उस राज्यव्यवस्थाकी सपूर्ण शक्तिको उसको लाख न चाहनेपर भी प्रजाहितके जुयेमें जोते रक्खें। हमारे देशके आजके सदस्य अपनी अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओंके चक्करमें पड जानेके कारण अपना यह पवित्र कर्तव्य त्याग कर देशद्रोही शासकोंके अनुगामी बनकर जनतासे तो विश्वासघात तथा अपनी जन्मदात्री जन्मभूमिसे द्रोह कर रहे हैं। व्यवस्थापिका परिषदोंके सदस्योंको कर्तव्यहीनताका मुख्य कारण हमारी जनताका राज्यव्यवस्थाके सम्बन्धमें गहरी नींद लेना है। हमारे देशकी जनता व्यवस्थापिका सदस्योंको दिनरात कर्तव्यभ्रष्ट देखकर भी, इन लोगोंके अपराधोंपर इनकी भर्त्सना ताडना, बहिष्कार तथा इन्हें पदच्युत न करके, राज्यसत्ताके सिरपरसे अपना अंकुश हटाती हटाती, अपना अस्तित्व ही मिटाती चली जा रही है और राज्यव्यवस्थाको लूटके एक विराट् ठेकेका रूप दे बैठी है और दिनरात आत्मघात कर रही है। जबतक जनता अपने हिताहितके सम्बन्धमें सावधान होकर सचेष्ट नहीं होगी या हरकतमें नहीं आयेगी तबतक ये सदस्य लोग इसी प्रकार शासकोंकी मुहदेखी करना नहीं छोडेंगे और अपने व्यक्तिगत स्वार्थोंवाले दृष्टिकोणोंके कारण कुशासनके ही समर्थक बनकर प्रजाके सेवक न रहकर सरकारी आदमी बननेमें गौरव मानना नहीं छोडेंगे। इन लोगोंकी विपरीत बुद्धिको ठीक करनेका भी उत्तरदायित्व अन्तमें हमारी जनताका ही है। जबतक जनमत राजकीय अन्यायोंको सुधरवानेके लिये इनपर कर्तव्यका अपरिहार्य दबाव डालने योग्य प्रबल नहीं बनेगा और जबतक वह इन्हें सरकारके सिरपर न्याय करनेका अनिषेध्य दबाव डालनेके लिये विवश नहीं करेगा, तबतक शासन सुधार असंभव बना रहेगा। ऐसे लोगोंको अपने अपने क्षेत्रोंकी सार्वजनिक सभाओंमें लोकमतकी मांगसे अपने प्रतिनिधित्वसे वंचित कर देना ही इनपर कर्तव्यका दबाव डालनेवाला अव्यर्थ उपाय होगा। पत्रकारों तथा व्यवस्थापिका सदस्योंके अत्याचारी शासकोंके पक्षमें मिला देनेवाले कारणोंको दूर करना प्रत्येक देशहितैषी नागरिकका कर्तव्य है।

वयस्कमताधिकारके आधारपर होनेवाली चुनाव पद्धतिके विरुद्ध देशव्यापी प्रचार।

हम इस बातकी पुनरुक्ति करना नहीं छोडेंगे कि इस

समस्त राष्ट्रीय व्याधियों और दोषोंका एक मात्र कारण यही है कि वर्तमान चुनावपद्धति देशकी हार्दिक शुभकामना पानेमें सफल नहीं हो सकी। अनधिकारी लोग देशकी हार्दिक शुभकामनाओंके साथ अपना कोई सबन्ध न रखनेवाली जिस हृदयहीन चुनाव पद्धतिका सहारा पाकर शासन विभागमें प्रविष्ट होनेके परवाने ले उडे हैं अब हमारा देश इसके विषैले परिणामोंको स्पष्ट देख चुका है। इस चुनाव पद्धतिको सार्वजनिक रूपमें निन्दित करना राष्ट्र का राष्ट्रिय कर्तव्य हो गया है। यदि उस पद्धतिके विषैले परिणामोंको प्रत्यक्ष देखकर भी, इस पद्धतिको देशव्यापी सार्वजनिक रूपमें निन्दित नहीं किया जायगा, यदि देशके कोने कोनेमें इस चुनाव पद्धतिके देशघाती रूपका प्रचार नहीं किया जायगा, यदि देशकी दृष्टिमें इसे घृणास्पद नहीं बना डाला जायगा, तो देशमें महापापोंको जन्म दे देनेवाली उस प्रणालीसे देशका पिण्ड नहीं छूटेगा और इस दूषित चुनाव पद्धतिको अपने विषैले प्रभावसे देशकी शासन व्यवस्थाको अपने विष उगलनेवाले नागपाशोंसे जकडते रहनेका अवसर बार बार मिलता चला जायगा। यदि शासनकी समस्त बुराइयां निकाल बाहर करनी है तो वयस्कमताधिकार जैसा ऊपरसे देखनेमें बडा उदारसा नाम लेकर योरोपसे आई हुई, देशके चरित्रको नष्ट कर डालनेवाली इस दूषित चुनाव पद्धतिकी फांसीसे अपने देशको बचाना ही पडेगा। यदि हमारे देशमें यह चुनाव पद्धति और कुछ दिन बनी रह गई तो देशकी शासनव्यवस्थामें सुधार असमव बना रहेगा। इसलिये बना रहेगा कि इस पद्धतिने राष्ट्रनिर्माणकी जो प्रथम इकाई निश्चित की है इसीमें बुराईका बीज निकाल बाहर करनेका कोई प्रबन्ध नहीं किया। राष्ट्रकी मूलाधार इस प्रथम इकाईकी खोटने हमारे राष्ट्रको चरित्रहीन बना डाला है।

जो चुनाव देशकी जनताको सदाके लिये अज्ञान, अनीति तथा कलहकी सबसे अन्तिम पतितावस्थामें पहुंचाता जा रहा है, जिसने हमारे ग्रामोंमें फूटके अनन्त बीज बोकर जनताको परस्परका सनातन बैरी बना डाला है, जो जनताको सदाके लिये अपना शासन अपने हाथोंमें रखनेके अयोग्य बनाकर रख रहा है, जो अंग्रेजोंकी ही भांति लोगोंपर अस्वाभाविक रोब गाडना चाहनेवाले देशद्रोही स्वार्थी सफेद पोश लोगोंको राज्यभार दे बैठा है, इस (चुनाव) के विषयमें सच्चे देश सेवकोंको देशव्यापी अविश्वास तथा घृणा पैदा करनी चाहिये। इस चुनावके विषयमें देशव्यापी अविश्वास तथा घृणाका पैदा हो जाना ही इस कृत्रिम प्रजातंत्रके मूल पर कुठार चलाना हो जायगा। आप देखेंगे कि इस चुनावके बहिष्कार मात्रसे हमारे देशका नकली प्रजातन्त्र पानीसे अलग की हुई मछलीकी मौत मर जावेगा। इसके संबन्धमें देशव्यापी अविश्वास तथा घृणा इसे जनताका अविश्वास पात्र बना डालेगी। इसके जनताके अविश्वास पात्र तथा घृणास्पद बनते ही इसकी आधारशिला इसके नीचेसे निकलकर भाग जायगी और यह चुनावका महल अ-र-ड-ड धम करके धराशायी हो जावेगा। इसके धराशायी हो चुकनेपर निकट भविष्यमें जनताकी संगठित ग्राम्य इकाई रूपी पुनीत बीजमेंसे सच्चे प्रजातन्त्रिक विशाल वट वृक्ष कुशासन रूपी आतपसे क्लान्त भारतको अपनी शीतल छाया प्रदान करनेके लिये अपनी विराट भुजायें फैलाकर आ खडा होनेमें देर नहीं करेगा। यदि देश अभी कुछ दिन हमारी वाली चुनाव पद्धतिको न भी अपनाये तो भी उसका वर्तमान विषाक्त पद्धतिको अस्वीकार करके वर्तमान चुनाव व्यवस्थासे अपना सबन्ध तोड देना मात्र हो अदूर भविष्यमें सच्चा प्रजातन्त्र पैदा करनेका कारण बन जायगा। परन्तु यह निश्चित है कि जबतक देशमें इस नकली प्रजा तन्त्रके प्रति अश्रद्धा, अविश्वास तथा घृणा उत्पन्न नहीं होगी, जबतक इसे पूर्ण रूपसे अस्वीकार नहीं कर दिया जायगा जबतक मृत शिशुको छातीसे चिपटाये फिरनेवाली मूढ बन्दरीके समान, इसका मोह नहीं त्यागा जायगा, तबतक हमारे देशमें प्रजातंत्रका गला घुटता ही रहेगा।

हो सकता है आज हमारे समस्त ग्राम प्रारम्भमें सर्व सम्मत रूपसे राष्ट्र निर्माणके लिये अपना प्रतिनिधि देनेको प्रस्तुत न हो सके और हमारा देश इस उद्देश्यके लिये कुछ दिनतक इन सब ग्राम्य इकाइयोंको न पा सके तो भी हमें वर्तमान चुनावको तो अस्वीकार करना ही चाहिये। हमारा वर्तमान चुनावको अस्वीकार करना ही नकलीको अस्वीकार करके असलीको अपनाना बन जायगा। इसे अस्वीकार करते ही असली वस्तु जन हृदयमें स्वयमेव उद्भूत होगी और नकली प्रजातन्त्रको हटाकर अपनी महिमामें अपने आप

आ विरजेगी। यह मनोवैज्ञानिक सचाई है कि मिथ्या वस्तुको अस्वीकार कर देना ही सत्यवस्तुको स्वीकार कर चुकना हो जाता है। इसी सिद्धान्तके अनुसार वर्तमान चुनावको अस्वीकार करना ही जनहृदयमें वास्तविक प्रजातंत्रका बीजवपन हो जायगा। ऊपर कहा जा चुका है कि मिथ्यावस्तुका परित्याग ही मनसे सत्य वस्तुको अपनाना हो जाता है। मिथ्या वस्तुको त्यागना, मनमें सच्ची वस्तुके मनोमय सुन्दर रूपको स्थान दे चुकना हो जाता है। जब मनमें एक बार किसी सच्चाईका रूप स्थान पा लेता है फिर वह अपने आपको बाह्याचरणमें प्रकट किये बिना नहीं मानता। आप देखें कि इसके अवसर वर्तमान रही चुनावको अस्वीकार कर देना मात्र ' सच्चे प्रजातंत्रकी आधार शिला यही भी हो जायेगा और सच्चे चुनावको अपनाना भी हो जायगा। "

देशमेंसे शासकपनका रोग हटानेका उपाय।

शासकपनका रोग प्रजातंत्रका शत्रु है। व्यक्तिगत चुनाव शासकपनेके रोगका बीज है। जनताकी निर्बल असहाय ऊहापोहविहीन राष्ट्रीय कर्तव्योंसे उदासीन मनोवृत्ति ही इस व्यक्तिगत चुनावका उपजाऊ क्षेत्र है। इस पद्धतिको सुधारनेसे ही शासकपनके रोगकी चिकित्सा हो सकती है। यदि हमारा राष्ट्र अपने आपको शासकपनके रोगसे आक्रान्त होकर दुःखमग्न पा रहा हो तो उस यह रोग हटाना ही पड़ेगा। उसका उचित उपाय यही होगा कि ग्राम समाजसे सर्व सम्मतिसे अनुमोदित किसी भी व्यक्तिको चुनावमें आनेकी अनुमति न दी जाय। व्यक्तिगत चुनावोंको बन्द कर डालना ही देशमें प्रजातन्त्रके बीजका आजाना हो जायगा।

सच्ची प्रजातन्त्र पद्धतिको अपना लेनेपर किसी भी प्रान्तकी किसी भी अन्यायी घटनाके प्रकाशमें आते ही किसी भी प्रान्तके किसी भी देशप्रेमी नागरिकको उसे अपने क्षेत्रमें न्यायनिष्ठा बढ़ानेका साधन बना लेना चाहिये। कहनेका तात्पर्य यह है कि यदि पूंजीपतियोंके क्रीत होनेसे हमारे देशके पत्रकार या सरकारके चाटुकार होनेसे अर्ध सरकारी बन गये हुये व्यवस्थापिका परिषदोंके सदस्य लोग हमारी इस मगल योजनामें सहयोग न दें तो देशके विचारशील नागरिक लोग ही इस योजना द्वारा केन्द्रिय तथा प्रान्तीय सरकारोंको अन्याय सुधारनेके लिये विवश करें। इस पद्धतिको अपनानेसे ही प्रजातन्त्र शासनको निश्चित रूपसे शान्तिरूपी फलका जनक बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रजातन्त्रको व्यावहारिक रूप देनेवाला कोई मार्ग नहीं है।

यदि देशमें सच्चा प्रजातन्त्र हो तो उसके शासकोंकी यही मनोवृत्ति होनी चाहिये कि हमें अपने देशमें स्वाभिमान जगाना है और उसके द्वारा अपने देशको सुधारना है। प्रजातन्त्रके परिचालकोंकी मनोवृत्ति सुधारकी शत्रु न होकर उसके अनुकूल होनी चाहिये। यह निश्चित है कि प्रजातन्त्रकी भित्ति अन्यायका संशोधन होते रहनेसे ही सुप्रतिष्ठित होती है। प्रजातन्त्रमें न्याय प्रार्थीके अभियोगके प्रमाणित होने पर सरकारकी ओरसे न्याय प्रार्थियोंको निम्न शब्दोंमें सधन्यवाद प्रोत्साहन मिलना चाहिये। कि " सरकारको आपकी ही कृपासे आत्मसुधार करनेका अवसर मिला है। सरकार इस सहयोगके लिये आपकी बहुत कृतज्ञ है। " यदि हमारे देशकी जनता इस योजनाको अपना ले तो वह देखे कि देशमें कोई भी अन्याय असशोधित नहीं रहा करेगा। किसी अन्यायको असशोधित रह जाने देना स्वेच्छाचारी मनोवृत्ति है। भुक्तभोगी जानते हैं कि आज हमारे देशमें कितने अन्याय असशोधित रहे हैं और न्याय व्यवस्थाके लिये कर देते देते प्रजाकी कमर टूटी जा रही है। प्रजाशक्तिको नीतिमत्तासे वर्तमान सरकारकी पक्षव्य वहारनीतिको सुधारते ही उसकी स्वेच्छाचारी मनोवृत्ति अपने आप सुधर जायगी और फिर सम्पूर्ण प्रजातन्त्र जनकल्याणकी उस सुदृढ भित्तिपर डटकर खड़ा हो जायगा, जहांसे उसे कोई हटा नहीं सकेगा।

शासकीय अन्यायोंको हटानेके उपाय

यदि देशमें सच्चा प्रजातन्त्र स्थापित करना हो तो देशमेंसे अन्यायकी घटनायें ढूंढकर सशोधनार्थ देशके सामने रखनेवाले व्यक्तियोंको राष्ट्रकी ओरसे सार्वजनिक रूपमें साधुवाद तथा प्रोत्साहन मिलना चाहिये और उनको इस सामाजिकताके लिये उच्च सेवा करनेके साधनोंसे सम्पन्न करना चाहिय।

यदि हमारा देश शासकोंकी स्वेच्छाचारी मनोवृत्तिको नहीं सुधारेगा और उसे ज्योंका त्यों उद्दण्ड, असंयत,

शासनमदमत्त, गर्वीली रह जाने देगा तो उसकी प्रजातन्त्र की डींग उन्मत्तप्रलाप बनी रहेगी। वर्तमान विधानमें शासकोंकी दूषित मनोवृत्ति सुधारनेके जिस सरल स्वाभाविक मार्गका उल्लेख हुआ है, उसको हमारी उपर्युक्त विधिसे प्रयोगमें लाना प्रत्येक नागरिकका कर्तव्य है। उसे चाहिये कि वह देशमें कहीं किसी भी प्रजापर होनेवाले अन्यायको अपने ही ऊपर हुआ अन्याय माने, अर्थात् वह उस अन्यायको भविष्यमें अपने ऊपर किये जा सकनेवाले अन्याय रूपी तापक विष वृक्षका बीज माने और उसे बीजावस्थामें ही समूल नष्ट कर डालनेके लिये अत्याचारितकी सहायताके लिये दौडे और अपने वातावरणान्तर्गत किसी भी अन्यायको विना सफल विरोधके न जाने दे।

हमें आशा है हमारा भारत हमारे इस सुझावको सहर्ष स्वीकार करेगा। यदि दुर्भाग्यसे वह हमारा दिया पाठ लेनेको प्रस्तुत न हो तो हम उसे सम्मति देंगे कि वह प्रजातन्त्रका नाम लेकर पहले तो अपने आपको फिर संसारको ठगना छोड दे और कान खोलकर सुने कि उसे तो सदा परतन्त्र ही रहना है। [क्रमशः]

दिव्य जीवन

[श्री अरविंद]

अध्याय १७

दिव्य अन्तरात्मा

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

(ईशोपनिषद्)

जिसका आत्मा समस्त भूत हो गया है, कारण उसने ज्ञान प्राप्त किया है, किस प्रकार वह मोहग्रस्त होगा और कहांसे उसे शोक होगा, उसे जो कि सर्वत्र एकत्वका दर्शन करता है।

अतिमनके विषयमें अब हम एक अवधारणा बना चुके हैं, हम यह भी जान चुके हैं कि हमारे जिस मनके ऊपर हमारी मानव सत्ता प्रतिष्ठित है उससे उलटा अतिमन है; अतिमन विषयक इस अवधारणासे हम देवत्व और दिव्य जीवनके विषयमें अस्पष्टके बजाय स्पष्टभाव बनानेमें समर्थ हुए हैं; इसके बिना हमें इन शब्दोंका प्रयोग शिथिलताके साथ करना पड़ता था। ये शब्द हमारे लिये कुछ ऐसे अस्पष्ट थे कि जिनमें अभीप्सा तो महान् थी किन्तु हम उससे कुछ भी समझ नहीं पाते थे। हमारे पूर्वोक्त वर्णनसे अब वह अस्पष्टता दूर हो गई है, अब हम इन शब्दोंके भावोंको दार्शनिक तर्कका दृढ आधार प्रदान कर चुके हैं, पहले हम केवल मानवता और मानव जीवनसे ही परिचित थे; अपने उपर्युक्त वर्णनसे अब हम इनके साथ देवत्व और दिव्य जीवनके संबंधको स्पष्ट रूपमें जान गये हैं। अब हमें, हमारे भीतर जो आशा और अभीप्सायें हैं वे विश्वके स्वभावसे और हमारी अपनी विश्वगत पूर्ववर्ती अवस्थाओंके स्वभावसे तथा हमारे विश्वगत विकासके अनिवार्य भविष्यसे न्यायसंगत जान पड़ने लगी है।

हम बौद्धिक रूपमें यह ग्रहण करने लगे हैं कि, ब्रह्म, सनातन परमार्थ तत्त्व क्या है, और यह समझने लगे हैं कि उससे जगत् किस प्रकार उद्भूत हुआ है। हम यह भी देखने लगे हैं कि जो ब्रह्मसे उद्भूत हुआ है वह किस प्रकार अनिवार्य रूपमें ब्रह्ममें ही लीन हो जाना चाहिये (तज्जलान्)। इससे आगे, अब हमारे सामने एक लाभदायक प्रश्न उपस्थित होता है जिसका अब हमें स्पष्ट उत्तर मिलनेका अवसर है। प्रश्न यह है कि न केवल एकान्तकी और आनन्दप्रद अनुभूतिके द्वारा अपनी सत्ताकी गहराईयोंमें पहुंचनेके लिये अपितु अपने दिव्य स्वभावमें, अपने (दिव्य) जीवन और दूसरोंके साथ हमारे (दिव्य) संबधोंमें पहुंचनेके लिये हममें किस प्रकार परिवर्तन होना चाहिये और हमें क्या होना चाहिये।

निश्चय ही हमारे कथनमें अब भी त्रुटि है; कारण अभीतक हम यह निर्वाचन करनेका प्रयास करते रहे हैं कि परिच्छिन्न प्रकृतिमें अवतरण करनेवाला ब्रह्म क्या है, किन्तु हम वास्तवमें वह ब्रह्म हैं जो कि व्यक्तिमें परिच्छिन्न प्रकृतिसे अपने स्वरूपभूत देवत्वकी ओर पुनः आरोहण कर रहा है। गतिके इस भेदके कारण उन देवताओंके जीवनमें जिनका कि कभी भी पतन नहीं हुआ है और उस मनुष्यके जीवनमें जो कि मुक्त हो गया है, भेद हो जाता है, मनुष्यने प्रकृतिमें पूर्ण अवतरणको स्वीकार करके अपने देवत्वको एक बार खोकर (भुलाकर) साधना और तपस्या द्वारा फिर प्राप्त किया है, अतः वह अपने भीतर अनुभवको धारण किये हुए हैं और उसने नवीन ऐश्वर्योंका संचय किया है; किन्तु देवताओंके जीवनमें यह बात नहीं है। परन्तु फिर भी, यह भेद केवल बाहरी रंग और रूपमें ही है, मूल स्वरूपमें कुछ भी भेद नहीं हो सकता। अपने पूर्व वर्णनसे हम अभीतक जिस परिणामपर पहुंचे हैं उसके आधारपर हम अपने अभीप्सित दिव्य जीवनके मूल स्वरूपका निश्चय अवश्य कर सकते हैं।

अतः अब हमारे सामने यह प्रश्न है कि जो दिव्य अन्तरात्मा ब्रह्मके भौतिक द्रव्यमें पतित होकर अज्ञानमें अवतीर्ण नहीं हुआ है और भौतिक प्रकृतिसे आच्छादित नहीं हुआ है उसकी सत्ता कैसी होगी ? वह दिव्य अन्त-

रात्मा ब्रह्मके समान पदार्थोंके मूल-सत्यमें, अविच्छेद्य ऐक्यमें अपनी अनन्त सत्ताके लोकमें निवास करता है; साथ ही वह दैवी मायाकी लीलाके द्वारा और परिबोधात्मक और प्रतिबोधात्मक सत्य-चेतना (ऋत्-चित्) के द्वारा ईश्वरके साथ अभेदके समान भेदका भी उपयोग करता है; वह *स्वयं बहुरूपधारी एकतत्वकी अनन्त लीलामें* दूसरे *दिव्य* अन्तरात्माओंके साथ भेदके साथ साथ अभेदका भी आलिंगन करता है; अतः प्रश्न है कि ऐसे दिव्य अन्तरात्माकी चेतना कैसी होगी ?

यह स्पष्ट है कि ऐसे अन्तरात्माकी सत्ता सर्वदा सच्चिदानन्दकी सचेतन लीलामें स्वतः पूर्ण होगी। यह उसकी अपनी सत्तामें शुद्ध और अनन्त आत्मसत्ता होगी; अपने मूलभावमें वह ऐसे अमर जीवनकी स्वतंत्र लीला होगी जो कि मृत्यु, जन्म और शारीरिक परिवर्तन (बाल, यौवन, वृद्धता आदि) से आक्रान्त नहीं है, कारण यह अज्ञानसे आवृत नहीं है और हमारी भौतिक सत्ताके अन्धकारमें लिप्त नहीं है। अपनी शक्तिमें वह (सत्ता) शुद्ध और अपरिच्छिन्न चेतना होगी; वह (चेतना) एक सनातन और ज्योतिर्मयी निश्चलता रूप आधारमें स्थित होगी, किन्तु फिर भी वह ज्ञानके विविध रूपोंसे और सचेतन शक्तिके विविध रूपोंसे स्वतंत्रतापूर्वक क्रीडा कर सकेगी; वह मानसिक भ्रान्तिके स्खलनोंसे और हमारी प्रयत्नशील इच्छाकी त्रुटियोंसे अविचल और अप्रभावित होगी, कारण वह सत्य और एकत्वसे कभी भी पृथक् नहीं होती, अपने दिव्य स्वरूपकी नैसर्गिक ज्योति और स्वाभाविक समंजसतासे कभी भी भ्रष्ट नहीं होती। अन्तमें, वह अपनी सनातन स्वानुभूतिमें एक शुद्ध और अविच्छेद्य आनन्द होगी, कालमें वह आनन्दकी स्वतंत्र विविधता होगी; उसका यह आनन्द हमारे द्वेष, घृणा, असंतोष और दुःख रूप विकारोंसे विकृत नहीं होगा; कारण वह अपने स्वरूपमें अविभक्त है, भ्रान्तिमयी स्वेच्छासे पराभूत नहीं है, कामनाके अज्ञ वेगसे विकृत नहीं है।

उसकी चेतना अनन्त सत्यके किसी भी अंगसे विच्छिन्न नहीं होगी; वह दूसरोंके साथ अपने संबंधोंमें चाहे जो भी स्थिति या अवस्था क्यों न धारण करे, उससे परिच्छिन्न नहीं होगी; उसके पूर्णरूपसे प्रपंचगत व्यक्तित्व और व्यावहारिक भेदकी क्रीडाके स्वीकार कर लेनेपर उसका आत्मज्ञान लेशमात्र भी लुप्त नहीं होगा। वह अपनी स्वानुभूतिमें नित्य परात्पर ब्रह्मकी उपस्थितिमें निवास करेगी। हमारे लिये परात्पर ब्रह्म अनिर्देश्य सत्का केवल एक बौद्धिक अवधारण है। बुद्धि हमें केवल यह बतलाती है कि एक ब्रह्म है जो कि परसे भी पर (परात्पर) है, एक अज्ञेय है जो कि अपने आपको किसी ऐसे रूपमें जानता है जो कि हमारे ज्ञानके प्रकारसे भिन्न है। परन्तु बुद्धि हमें उसके सम्मुख नहीं ले जा सकती।

इसके विपरीत, दिव्य अन्तरात्मा पदार्थोंके सत्यमें निवास करता हुआ सर्वदा अपने विषयमें यह सचेतन भाव रखेगा कि वह परात्पर ब्रह्मकी एक अभिव्यक्ति है। उसे यह भी ज्ञान होगा कि उसकी अपनी अक्षर सत्ता उस परात्पर ब्रह्म, सच्चिदानन्दका मूल स्वरूप है; उसे यह भी ज्ञान होगा, कि उसकी सचेतन सत्ताकी क्रीडा उस तत्की सच्चिदानन्दके रूपोंमें अभिव्यक्ति है। अपने ज्ञानकी प्रत्येक अवस्था या क्रियाके विषयमें वह यह जानेगा कि अज्ञेय ही अपने परिवर्तनशील आत्मज्ञानके एक रूपके द्वारा अपने आपको जान रहा है; अपनी शक्ति या इच्छाकी प्रत्येक क्रिया या अवस्थामें वह यह अनुभव करेगा कि परात्पर ब्रह्म ही सत्ता और ज्ञानकी सचेतन शक्तिके एक रूपके द्वारा अपने आपको अधिकृत कर रहा है।

आनन्द, हर्ष या प्रेमकी अपनी प्रत्येक अवस्था या क्रियामें वह यह जानेगा कि परात्पर ब्रह्म ही अपने सचेतन आत्म-आनन्दके एक रूपके द्वारा अपने आपका आलिंगन कर रहा है। परात्पर ब्रह्मकी यह उपस्थिति उसके लिये कोई ऐसा अनुभव नहीं जिसकी कभी कभी अकस्मात् झलक आजाती हो अथवा कठिनाईसे अन्तमें उसे प्राप्त कर लिया गया हो और उसके स्थिर रखनेमें कठिनाई हो, अथवा उसकी सत्ताकी साधारण अवस्थापर जोडी गई, अथवा सिद्धि रूपमें बाहरसे आरोपित की गई हो; यह अभेद और भेदात्मक दोनों ज्ञानोंमें उसकी सत्ताकी आधार रूप होगी; यह उसके समस्त ज्ञान, इच्छा, कर्म और उपभोगमें विद्यमान रहेगी। यह उपस्थिति न तो उसके काल-रहित (कालातीत) आत्मासे लुप्त होगी और न कालगत क्षणसे, न उसकी देशरहित सत्तासे और न उसकी देशमें विस्तृत सत्ताके किसी नियत रूपसे लुप्त होगी; न समस्त कारण और परिस्थितिसे अतीत उसके निरुपाधिक शुद्ध स्वरूपसे लुप्त होगी और न परिस्थिति, उपाधि और कार्य-कारण-

भावके किसी संबन्धसे लुप्त होगी। परात्पर ब्रह्मकी यह सतत उपस्थिति दिव्य अन्तरात्माके अनन्त स्वातन्त्र्य और आनन्दका आधार होगी, यह विश्व लीलामें उसकी सुरक्षाको दृढता प्रदान करेगी और उसके दिव्य भावको मूल, रस और सार तत्त्व प्रदान करेगी।

इसके अतिरिक्त ऐसा दिव्य अन्तरात्मा सच्चिदानन्दकी सनातन सत्ताके दो रूपोंमें एक साथ निवास करेगा, ये दो रूप उस परात्पर ब्रह्मके आत्म-प्रसारके दो अ-पृथक् करणीय ध्रुव हैं जिन्हें हम एक और बहु कहते हैं। वास्तवमें तो प्रत्येक जीव इन दोनोंमें ही निवास किया करता है, किन्तु हमारी विभक्त आत्म-संवित्को इन दोनोंमें एक असंगति, एक खाई जान पड़ती है, इनकी यह असंगति हमें दोमेंसे किसी एकका चुनाव करनेके लिये विवश करती है— हम या तो ऐसे बहुत्वमें रहें जो कि एक तत्त्वकी साक्षात् और समग्र चेतनासे रहित हो, अथवा उस ऐक्यमें रहें जो कि बहुत्वकी चेतनाका निरास करता हो। परन्तु दिव्य अन्तरात्मा इस विच्छेद और द्वैतका दास नहीं होगा। वह अपने भीतर एक साथ अनन्त आत्म-समाधि और अनन्त आत्म विस्तार और प्रसरणको जानेगा। वह एकमेव तत्त्वके विषयमें एक साथ यह जानेगा कि वह अपनी एकत्वमयी चेतनामें असंख्य बहुत्वको अपने भीतर इस प्रकार धारण करता है मानो वह शक्यता हो, अव्यक्त हो और इसलिये उस अवस्थासंबधी हमारे मानसिक अनुभवके लिये वह (बहुत्व) असत् हो; दूसरी ओर वही एकमेव तत्त्व अपनी विस्तृत चेतनामें बहुत्वको अपनी चेतन सत्ता, इच्छा और आनन्दकी लीलाके रूपमें, व्यक्त और सक्रिय रूपमें धारण करता है।

इसी प्रकार बहुके विषयमें उसे, समान रूपमें, यह ज्ञान होगा कि ये (बहु) अपनी सत्ताके सनातन कारण और यथार्थ स्वरूपमें उस एक तत्त्वको नीचे अपनी ओर सदा आकर्षित किया करते हैं, इसके साथ साथ वह यह भी जानेगा कि वह एकमेव तत्त्व उनकी भेदात्मिका लीलाका सनातन पर्यवसान, शिखर और आनन्दमय औचित्य है और उससे आकृष्ट होकर वे सदा उसकी ओर आरोहण कर रहे हैं। पदार्थोंके विषयमें यह विशाल दृष्टि सत्य चेतना (ऋत्-चित्) का, वैदिक ऋषियोंने जिसे ऋचाओंमें बृहत् सत्यं ऋतं कहा है उसका आधार है। इन समस्त विरोधी तत्त्वोंका यह ऐक्य ही सच्चा अद्वैत है, अज्ञेयके ज्ञानका वर्णन करनेवाला परम व्यापक वचन है।

दिव्य अन्तरात्मा सत्ता, चेतना, इच्छा और आनन्दकी समस्त विविधताओंके विषयमें यह जानेगा कि वे उस आत्म-समाहित एकतत्त्वके प्रस्रव, विस्तार और प्रसार हैं; यह एकतत्त्व वह है जो कि अपने आपको भेद और विभागमें विकसित नहीं कर रहा है अपितु अपने अनन्त एकत्वके ही एक दूसरे रूपमें एक विस्तृत रूपमें विकसित कर रहा है। वह दिव्य एक अन्तरात्मा तत्त्व स्वयं अपनी सत्ताके सारमें, अपने स्वरूपमें, सदा एकत्वमें समाहित होगा और अपनी सत्ताके विस्तारमें सर्वदा विविधतामें अभिव्यक्त होगा। उसके भीतर जो कुछ भी रूपवान् होता है वह उस एकमेव तत्त्वके भीतर विद्यमान शक्यताओंका अभिव्यक्त रूप होगा; शब्द या नाम नाम-रहित निश्चल नीरवताका स्पन्दन होगा; रूप रूपरहित सारतत्त्वकी अभिव्यक्ति होगा; सक्रिय इच्छा या शक्ति शान्त निश्चल शक्तिसे प्रवृत्त होगी; आत्म-ज्ञानकी किरण कालरहित आत्मसंवित्के सूर्यसे निकलेगी, भूतभावकी लहर नित्य आत्म-चेतन सत्-सागरसे उठकर आत्म-चेतनसत्ता (प्राणी) का रूप धारण करेगी; हर्ष और प्रेम नित्य निश्चल आनन्दसे सर्वदा बाहर फूट निकलेंगे। यह उसके अपने आत्म-प्रसारमें चरम द्वित्व होगा, और इसमें प्रत्येक सापेक्ष तत्त्व स्वयं अपने लिये निरपेक्ष होगा कारण वह अपने आपको उस निरपेक्ष परात्परकी अभिव्यक्ति जानेगा परन्तु उस अज्ञानसे रहित होगा जो कि दूसरे सापेक्ष तत्त्वोंको अपनी सत्तासे विजातीय या अपनेसे कम पूर्ण मानकर उनका बहिष्कार कर देता है।

विस्तार (विश्व सृष्टि) में दिव्य अन्तरात्मा अतिमानस सत्ताकी तीन श्रेणियों, भूमिकाओंको जानेगा; वह इन्हें इस रूपमें नहीं जानेगा। जैसे कि हमें मनसे मानना पड़ता है– वह इन्हें तीन श्रेणी रूपमें न जानकर सच्चिदानन्दकी आत्म-अभिव्यक्तिके त्रिमुख तथ्योंके रूपमें जानेगा। वह इन्हें एक ही व्यापक आत्मानुभूतिमें ग्रहण कर सकेगा— कारण बृहत् व्यापकता सत्य-चेतन (ऋतं-चित्) अतिमनका आधार है। वह दिव्यभावसे समस्त पदार्थोंके विषयमें यह विचार कर सकेगा, देख सकेगा और जान सकेगा कि वे सब आत्मा, स्वयं उसके अपने आत्मा, सबके एक आत्मा, आत्म-सत्, आत्म-भूत हैं, वे अपने भूत-

भावोंमें विभक्त नहीं है और उसके अपने आत्म-चैतन्यसे पृथक् अस्तित्व नहीं रखते । वह दिव्यभावसे यह विचार कर सकेगा, देख सकेगा और प्रत्यक्ष ग्रहण कर सकेगा कि समस्त प्राणी एकमेव तत्त्वके आत्मरूप हैं, इनमेंसे प्रत्येक इस एक-तत्त्वमें अपना अस्तित्व रखता है, इस एक तत्त्वमें स्वयं अपना दृष्टिकोण रखता है, समस्त प्राणियोंके साथ, जो कि अनन्त ऐक्यके अन्तर्गत हैं, अपने संबंध रखता है; परन्तु वे सब उस एक तत्त्वके आश्रित हैं, उस एककी अनन्ततामें उसके सचेतन रूप हैं।

वह दिव्य भावसे इन समस्त प्राणियोंके विषयमें यह विचार कर सकेगा, देख सकेगा और प्रत्यक्ष ग्रहण कर सकेगा कि वे सब अपना अपना व्यक्तित्व रखते हैं; प्रत्येक अपना पृथक् दृष्टिकोण रखता हुआ व्यक्तिगत देव (जीव) के रूपमें रहता है; प्रत्येक एकमेव तत्त्व और परमात्माके साथ और उसमें निवास करता है। इसलिये प्रत्येक केवल रूप या प्रतिबिम्ब नहीं है। परमार्थ पूर्णका एक वास्तविक मिथ्या अंश नहीं है, अचल सागरके उथलपर केवल एक भागपर लहर नहीं है; कारण ये सब उदाहरण केवल अपर्याप्त मानसिक चित्रोंसे अधिक नहीं हैं। इसके विपरीत वह यह जानेगा कि इनमेंसे प्रत्येक पूर्णमें एक पूर्ण (पूर्णात् पूर्णमुदच्यते) है, एक ऐसा सत्य है जो कि अनन्त सत्यकी पुनरावृत्ति करता है, एक ऐसी लहर है जो कि संपूर्ण सागर है, एक ऐसा सापेक्ष है कि जब हम रूपके मूलमें देखते हैं और उसे पूर्ण रूपमें देखते हैं तो वह निरपेक्ष (परात्पर) ही सिद्ध होता है।

कारण ये तीन एक ही सत्ताके पक्ष हैं। इनमेंसे पहला पक्ष उस आत्मज्ञानपर प्रतिष्ठित है जिसके विषयमें, जब कि हम ब्रह्मका अनुभव करते हैं, उपनिषदोंने कहा है कि हमारे भीतरका आत्मा ही समस्त भूत हो गया है (यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत्); दूसरा पक्ष उस ज्ञानपर प्रतिष्ठित है जिसके विषयमें यह कहा गया है कि समस्त भूतोंको आत्मामें देखता है (यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति); तीसरा पक्ष उस ज्ञानपर प्रतिष्ठित है जिसके विषयमें यह कहा गया है कि आत्माको समस्त भूतोंमें देखता है (सर्वभूतेषु चात्मानम्)। " आत्मा समस्त भूत हो गया है " यह ज्ञान हमारे सबके साथ एकत्वका आधार है; " आत्मा समस्त भूतोंको अपने भीतर धारण करता है " यह ज्ञान हमारे सबके साथ भेदाभेदका आधार है; " आत्मा सबके भीतर निवास करता है " यह ज्ञान वैश्वमें हमारे व्यक्तित्वका आधार है। हमारे मनकी त्रुटि, उसकी किसी एक पक्षपर केन्द्रित होनेकी आवश्यकता उसे विवश करती है कि वह इनमेंसे किसी एक पक्षको सत्य मान ले और दूसरोंका निराकरण कर दे, हमारी अपूर्ण अनुभूति जो कि दूसरी अनुभूतियोंका निराकरण भी करती है सर्वदा हमें सत्यमें भ्रान्तिका अंश प्रवेश करने और सर्वव्यापी ऐक्यमें संघर्ष और परस्पर-प्रतिषेधका अंश घुसेडनेकी प्रेरणा देती है। परन्तु दिव्य अतिमानस अन्तरात्माको ये त्रिविध और निश्चय ही त्रिमुखी अनुभूति होनी चाहिये, क्योंकि अतिमनका स्वभाव है सर्वव्यापी एकत्व और अनन्त साकल्य।

हम यह कल्पना कर सकते हैं कि यह दिव्य अन्तरात्मा किसी ऐसे जीवकी चेतनामें स्थिति करता है, उसकी चेतनाको केन्द्र बनाता है जो कि दूसरोंके साथ विशिष्ट संबंधमें रहता और कर्म करता है। ऐसी दशामें भी उस दिव्य अन्तरात्माकी चेतनाके मूलमें वह पूर्ण ऐक्य विद्यमान होगा जिससे सब उद्भूत होता है; उस चेतनाकी पृष्ठभूमिमें विस्तृत और परिवर्तित ऐक्य होगा, वह अन्तरात्मा इनमेंसे किसीपर भी जानेमें और वहांसे अपने व्यक्तित्वका विचार करनेमें समर्थ होगा। वेदमें ये सब स्थितियां देवताओंकी बतलाई गई हैं। स्वरूपतः देवता एक सत् हैं जिन्हें ऋषि भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारते हैं- एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। [क्रमशः]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः विश्वे देवाः । गायत्री । (ऋ० १।३।८)

विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमागन्त तूर्णयः । उस्रा इव स्वसराणि ॥ ५३४ ॥

(उस्राः) गायें (स्व-सराणि इव) घरोंमें आजाती हैं, ठीक उसी प्रकार (अप्-तुरः) जल्द कार्य करनेवाले (तूर्णयः) चपल (विश्वे देवासः) सभी देव (सुतं आगन्त) निचोडे हुए सोम रसके निकट चले आयें।

इस मंत्रमें यह आशा व्यक्त करते हुए कि सारे देव सोमपानके लिए आजायँ, गौओंकी उपमा दी है, जिस भाँति सायंकाल होनेपर गौएँ शीघ्रतया घर लौट आती है वैसेही सम्पूर्ण देव सोम पिनेके लिए देर न करते हुए उपस्थित हों।

[१९१] गाईयोंके साथ आओ।

शौनकः । मेधा । अनुष्टुप् । (अथर्व० ६।१०८।१)

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि ।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥ ५३५ ॥

हे (मेधे) बुद्धि (त्वं नः प्रथमा) तू हमारे लिए प्रथम स्थानमें (यज्ञिया असि) पूजनीय है, (गोभिः अश्वेभिः आ गहि) तू गायों और अश्वोंके साथ आ जा, उसी प्रकार तू (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य किरणोंके साथ हमारे समीप आओ।

[१९२] गौएँ वीरोंके पिछेसे आती हैं।

दीर्घतमा औचथ्यः । अश्वः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१६३।८)

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ५३६ ॥

हे (अर्वन्) अश्व ! (त्वां) तुझे (अनु) अनुसरण करता हुआ (रथः) रथ (अनु मर्त्यः) तेरे पीछे पीछे मनुष्य (अनु गावः) तेरा अनुसरण करती हुई गौएँ (अनु कनीनां भगः) तेरे पश्चात् ही स्त्रियोंका भाग्य, (अनु व्रातासः) तेरे ही पीछे वीर मनुष्योंके समूह (तव सख्यं) तेरेसे मित्रता करनेके लिए (ईयुः) जाते हैं और (देवाः) देवता भी (ते वीर्यं ममिरे) तेरेही पराक्रमका वर्णन करते हैं।

[१९३] गौवोंकी वृद्धि।

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती । (ऋ० ५।५५।५)

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातां अनुरथा अवृत्सत ॥ ५३७ ॥

हे (दस्रा मरुतः) शत्रुविनाशकर्ता वीर मरुतो ! (यूयं) तुम लोग (पुरीषिणः) जलसे युक्त हो, अतः (समुद्रतः उदीरयथ) समुद्रसे जल ऊँचाईपर ले जाते हो और (वृष्टिं वर्षयथ) बारिश करते हो, (वः धेनवः) तुम्हारी गौएँ (न उपदस्यन्ति) क्षीण नहीं होती हैं, क्योंकि (शुभं यातां) लोक-कल्याणके लिए जाते समय (रथाः अनु अवृत्सत) रथ तुम्हारे पीछे चलने लगे।

वः धेनवः न उपदस्यन्ति= तुम्हारी गौवें क्षीण नहीं होतीं, क्योंकि तुम उनका ऐसा उत्तम पालन करते हो कि उनका संवर्धन ही होता है।

[१९४] गौओंसे भूषण ।

वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।३।२)

त्वं अर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि ।

अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥ ५३८ ॥

हे (स्वधा-वन्) हे स्वधासे युक्त अग्ने ! (त्वं यत् कनीनां अर्यमा भवसि) तू चूँकि कन्याओंका नियमनकर्ता बनता है और (गुह्यं नाम बिभर्षि) गोपनीय यश धारण करता है, (यत्) जो तू (दम्पती समनसा कृणोषि) पतिपत्नीको एक विचारवाले बना देता है, इसलिए (सुधितं मित्रं न) अच्छे मित्रके समान (गोभिः अञ्जन्ति) गायोंसे तुझे विभूषित करते हैं।

[१९५] गौओंके सींग ।

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती । (ऋ० ५।५९।३)

गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।

अत्या इव सुभ्व१श्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥ ५३९ ॥

(गवां शृंगं इव) मानों गायोंके सींगके तुल्य (श्रियसे) शोभाके लिए (उत्तमं) श्रेष्ठ शिरोवेष्टन तुम धारण करते हो; (सूर्यः न) सूर्यके समान (रजसः विसर्जने) अँधेरा दूर हटानेके लिए (चक्षुः) जनताके लिए तुम लोग नेत्ररूपी बनते हो, (अत्याः इव) घोडोंके तुल्य (सुभ्व चारवः स्थन) सुन्दर एवं मनोहर रूपवाले बनते हो (नरः) तुम नेता बनकर (मर्याः इव) मानवोंके जैसे (श्रियसे चेतथ) शोभा पानेके उपायोंको तुम जानते हो।

गौओंके सींग बडे सुन्दर होते हैं।

[१९६] गायोंवाली जनताकी संस्था ।

सोभरिः काण्वः । इन्द्रः । ककुप् । (ऋ० ८।२१।११)

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।

संस्थे जनस्य गोमतः ॥ ५४० ॥

हे (वृषभ) इच्छाओंकी पूर्ति करनेहारे प्रभो ! (त्वया युजा स्वित् ह) तेरी सहायता प्राप्त होनेपर जरूर हम (गोमतः जनस्य संस्थे) गायोंवाली जनताकी संस्थामें (श्वसन्तं) हमारे प्रति क्रोधके मारे हाँफते हुए, शत्रुको (प्रति ब्रुवीमहि) उल्टा जवाब देनेका साहस करते हैं।

[१९७] गाइयोंसे दुर्गतिको दूर करना ।

अङ्गिराः (कितववधकामः) । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । अथर्व० ७।५२।७

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।

वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ ५४१ ॥

(दुरेवां अमतिं गोभिः तरेम) दुर्गतिरूप दुष्ट बुद्धिको गायोंसे पार करेंगे, (पुरुहूत) हे बहुतों-द्वारा प्रशंसित देव ! (विश्वे यवेन वा क्षुधं) हम सभी जौसे भूखको पार करेंगे (वयं राजसु प्रथमा अरिष्टासः) हम सभी राजाओंमें उत्कृष्ट होकर विनाशको न प्राप्त होते हुए (वृजनीभिः धनानि जयेम) निज शक्तियोंसे धनोंको जीत लेंगे।

[१९८] गायोंसे पूर्णता होती है।

मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ० १।१६।९)

सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो। स्तवाम त्वा स्वाध्यः॥ ५४२॥

हे (शतक्रतो) सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र! (सः) ऐसा वह तू (नः कामं) हमारे मनोरथ (गोभिः अश्वैः) गायों और घोडोंसे (आ पृण) पूर्ण करो (स्वाध्यः) भली भाँति ध्यान देकर हम (त्वा स्तवाम) तेरी स्तुति करते हैं।

स्वाध्यः (सु-आ-ध्यः) ध्यानपूर्वक कार्य करनेवाले।

गोभिः आपृण= गायोंसे पूर्णता करो, गायोंसे पूर्णता होती है। सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली गौएँ हैं।

[१९९] गायसे मनुष्यों और पशुओंका नाश न हो।

ब्रह्मा। यमिनी। त्रिष्टुप्, विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः। (अथर्व० ३।२८।५-६)

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्व१ः स्वायाः।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च॥ ५४३॥
यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च॥ ५४४॥

(यत्र) जिधर (स्वायाः तन्वः रोगं विहाय) अपने शरीरका रोग छोडकर (सुहार्दः सुकृतः मदन्ति) अच्छे दिलवाले तथा बढिया कार्य करनेवाले हर्षित होते हैं, हे (यमिनि) गौ! (तं लोकं अभिसंबभूव) उस देशमें सब प्रकार मिलकर हो जाओ, (सा न पुरुषान् पशून् मा हिंसीत्) वह गौ हमारे मनुष्यों और जानवरोंकी हिंसा न करे।

[२००] दूध देनेहारी गौसे संतोष।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गव. शौनकः। अग्निः। जगती। (ऋ० २।२।९)

एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि॥ ५४५॥

हे (पूर्व्य अग्ने) पुरातन अग्ने! (बृहत्-दिवेषु अमृतेषु) अमर देवोंमें तुझेही (नः मानुषा धीः एव) हमारी मानवी बुद्धि तेरे यशगानसे (पीपाय) बढाती है, (वृजनेषु कारवे) यज्ञमें तेरी प्रशंसा करनेहारे भक्तको तू (त्मना इषणि) स्वयंस्फूर्तिसे ही (शतिनं पुरुरूपं) सैकडों प्रकारका और भाँति भाँतिका धन देकर (दुहाना धेनुः) दूध देकर संतुष्ट करनेवाली गायके समान, प्रसन्न करनेवाला बन।

[२०१] गोशाला।

सदापृण आत्रेयः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ५।४५।६)

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम्॥ ५४६॥

(सखायः एत) हे मित्रो! इधर आओ, (धियं कृणवाम) बुद्धिपूर्वक प्रशंसा करें, (या माता) जो माताके समान हितकारक होकर (गोः व्रजं) गौशालाको (अप ऋणुत) खोल चुकी; (यया) जिसकी सहायतासे (मनुः विशिशिप्रं जिगाय) मनुने शत्रुको जीत लिया और (यया) जिससे

(वङ्कुः वणिक्) एक ऋषि व्यापारी होकर (पुरीषं आप) जल प्राप्त कर सका।
गोः व्रजं अप ऋणुत= गौओंकी गोशालाको खोल दिया।

शंयुर्बार्हस्पत्य। इन्द्रः। गायत्री (ऋ० ६।४५।२४)

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्। शचीभिरप नो वरत ॥ ५४७ ॥

(दस्युहा) दस्युका वध करनेवाला इन्द्र कुवित्सकी (गोमन्तं व्रजं) गायोंसे पूर्ण गोशालाके प्रति (प्र गमत् हि) अधिक मात्रामें चला जाता है, इसमें संदेह नहीं, इसलिए (शचीभिः नः अपवरत्) शक्तियोंसे वह हमारे लिए उन गायोंको खोल दे।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। आश्विनौ। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।६२।११)

आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक्।
दृळ्हस्य चिद्गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ॥ ५४८ ॥

(गृणते) स्तोताके लिए (चित्रराती) विचित्र ढंगका दान देनेवाले अश्विनौ! तुम (परमाभिः) श्रेष्ठ कोटिके (उत मध्यमाभिः अवमाभिः) और मँझली श्रेणी एवं निम्न दर्जेके (नियुद्भिः) घोडोंसे (अर्वाक् आयात) सम्मुख आ जाओ और (गोमतः व्रजस्य) गायोंसे पूर्ण गोशालाके, (दृळहस्य चित्) सुदृढ रहनेपर भी (दुरः विवर्तम्) दरवाजे खोल दो।

विश्वमना वैयश्व। इन्द्रः। उष्णिक्। (ऋ० ८।२४।६)

आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः।
आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥ ५४९ ॥

हे (अद्रिवः) वज्रधारी! (गोभि व्रजं इव) गायोंको लेकर जैसे कोई गोशालामें चले जाता है, वैसेही (गीर्भिः त्वा आ ऋणोमि) भाषणोंसे मैं तेरे समीप आता हूँ और (जरितुः कामं मनः) स्तोताके अभीष्ट एवं मनको (आ पृण स्म) पूर्णतया पूर्ण कर।

नाभाकः काण्वः। वरुणः। महापङ्क्तिः। (ऋ० ८।४१।६)

यस्मिन् विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता।
त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे।
अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे ॥ ५५० ॥

(चक्रे) पहियेमें (नाभि इव) केन्द्रके तुल्य (यस्मिन्) जिसमें (विश्वानि काव्या) सभी काव्य (श्रिता) आश्रित हुए हैं, उस (त्रितं जूती सपर्यत) त्रितकी शीघ्रतापूर्वक पूजा करो; (व्रजे संयुजे गावः न) गोशालामें ठीक योजनाके लिए गायें जैसे रखी जाती हैं, उसी प्रकार (युजे अश्वान् अयुक्षत) जोतनेके लिए घोडोंको जोत चुके हैं (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नम्र हों।

वशोऽश्व्यः। इन्द्रः। सतो बृहती। (ऋ० ८।४६।९)

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥ ५५१ ॥

हे (विश्ववार) सबसे स्वीकारने योग्य! (शविष्ठ वसो) बलिष्ठ तथा बसानेहारे इन्द्र! (यः) जो (वाजेषु तरुता) युद्धोंमें पार जानेवाला, (दुष्टरः श्रवाय्यः अस्ति) बडी कठिनाईसे जिससे

पिंड छुडाया जा सके, ऐसा और अन्नयुक्त है, ऐसा (सः) वह तू (नः सवना आ गहि) हमारे यज्ञोंमें आओ ताकि हम (गोमति व्रजे गमेम) गायोंसे भरपूर गोशालामें प्रवेश कर सकें।

त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।४।२)

यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णं इव व्रजं यविष्ठ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन॥ ५५२॥

हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवक! (गावः उष्णं व्रजं इव) गौएँ गर्म गोशालामें जैसे चली जाती हैं, उसी प्रकार (जनासः यं त्वा अभि संचरन्ति) लोग जिस तेरे समीप आकर इधर उधर हलचल करते हैं, ऐसा (देवानां मर्त्यानां दूतः असि) तू देवों और मानवोंका दूत है और (महान्) बडा होता हुआ (रोचनेन अन्तः चरसि) जगमगाते मार्गपरसे अन्दर संचार करता है।

भिषगाथर्वणः। ओषधयः। अनुष्टुप्। (ऋ० १०।९७।८)

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष॥ ५५३॥

(गोष्ठात् गावः इव) गोशालासे गौएँ जैसे बाहर निकलती हैं वैसेही (ओषधीनां शुष्माः) ओषधियोंके बल या सामर्थ्य (उत् ईरते) ऊपर उठ आते हैं। सबके सामने व्यक्त होते हैं, हे पुरुष! जो औषधियाँ (तव) तुझको (आत्मानं धनं सनिष्यन्तीनां) अपने आपको तथा सामर्थ्य देनेको तैयार हैं।

सविता। पशवः। त्रिष्टुप्। (अथर्व० २।२६।१)

एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन् तान्गोष्ठे सविता नियच्छतु॥ ५५४॥

(ये परा-ईयुः पशवः इह आयन्तु) जो दूर चले गये हैं, ऐसे गौ आदि पशु इधर आ जायँ (येषां सहचारं वायुः जुजोष) जिनका साहचर्य वायु करता है (येषां रूपधेयानि त्वष्टा वेद) जिनके स्वरूपोंको त्वष्टा अर्थात् कुशल कारीगर जानता है, (सविता तान् अस्मिन् गोष्ठे नियच्छतु) प्रेरक उन्हें इस गौओंके बाडेमें बांधकर रखे।

सविता। पशवः। त्रिष्टुप्। (अथर्व० २।२६।२)

इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरानयतु प्रजानन्।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ॥ ५५५॥

(पशवः इमं गोष्ठं सं स्रवन्तु) गौ आदि पशु इस गोशालामें आकर इकट्ठे हों, (बृहस्पतिः प्रजानन् आनयतु) बृहस्पति जानता हुआ उन्हें ले आवे, (सिनीवाली एषां अग्रं आनयतु) अन्नवाली देवी इनके अग्रभागतक ले जावे (अनुमते) हे अनुकूल बुद्धि रखनेवाली देवी! (आजग्मुषः नियच्छ) आनेवालोंको नियममें रख।

सविता। पशवः। उपरिष्टाद्विराड् बृहती। (अथर्व० २।२६।३)

सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः।
सं धान्यस्य या स्फातिः संस्राव्येण हविषा जुहोमि॥ ५५६॥

(पशवः अश्वाः पुरुषाः उ सं संस्रवन्तु) गौ आदि पशु, घोडे, पुरुष भी मिलजुलकर चलें (या धान्यस्य स्फातिः सं) जो धान्यकी वृद्धि है, वह भी मिलकर बढे (संस्राव्येण हविषा जुहोमि) मैं मिलानेवाले हविसे आहुति दे डालता हूँ।

ब्रह्मा । गोष्ठः, अहः, गावः । अनुष्टुप् । (अथर्व० ३।१४।१)

सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या ।

अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥ ५५७ ॥

हे गौओ ! (वः सुषदा गोष्ठेन सं) तुम्हें उत्तम बैठने योग्य गोशालासे युक्त करते हैं, (रय्या सं) उत्तम धनसे युक्त करते हैं, (सु-भूत्या सं) उत्तम ऐश्वर्यसे या अच्छी संतानसे युक्त करते हैं, (यत् अहर्जातस्य नाम) जो दिनमें श्रेष्ठ वस्तु मिल जाय (तेन वः संसृजामसि) उससे तुम्हें जोड देते हैं ।

ब्रह्मा, भृग्वङ्गिराश्च । इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् । (अथर्व० ३।११।५)

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।

व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥ ५५८ ॥

हे प्राण एवं अपान ! (अनड्वाहौ व्रजं इव प्र विशतं) बैल जिस भाँति गोशालामें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार तुम प्रवेश करो । (अन्ये मृत्यवः वियन्तु) दूसरे अनेक अपमृत्यु दूर चले जायँ (यान् इतरान् शतं आहुः) जिन दूसरोंकी संख्या कहते हैं कि सौ है ।

ब्रह्मा । गोष्ठः, अहः, गावः । अनुष्टुप् (अथर्व० ३।१४।५)

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।

इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥ ५५९ ॥

(गोष्ठः वः शिवः भवतु) गोशाला तुम्हारे लिए हितप्रद हो, (शारिशाका इव पुष्यत) शालिके शाकके समान पुष्ट बनो, (इह एव प्रजायध्वं) इधरही प्रजा उत्पन्न करो, (मया वः संसृजामसि) मेरे साथ तुम्हें भ्रमणके लिए ले जाता हूँ ।

बादरायणिः । ऋषभः । त्र्यवसाना पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा पुरउपरिष्टाज्ज्योतिष्मती जगती । (अथर्व० ४।३८।७)

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन्कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।

अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः ॥ ५६० ॥

(वाजिनीवन् वाजिन्) हे अन्नवाले बलवान वीर ! (अन्तरिक्षेण सह) अपने आन्तरि विचारके साथ (कर्की वत्सां) कर्तृत्वशालिनी बछडेकी (इह रक्ष) इधर रक्षा करो । उनके लिए (अयं घासः) यह तृण तथा (अयं व्रजः) यह गोशाला है (वत्सां इह निबध्नीमः) बछडीको इधर बांध देते हैं ।

१ वत्सां इह रक्ष= बछडोंको यहां सुरक्षित रखो,
२ अयं व्रजः, अयं घासः= यह गोशाला है और यह घास यहां रखा है,
३ वत्सान् इह निबध्नीमः= बछडोंको यहां बांध देते हैं । गोशालामें ये सब प्रबंध होने चाहिये ।

सागलिः गावः । अनुष्टुप् । (अथर्व० ६।५२।२)

नि गावो गोष्ठे असदन् ॥ ५६१ ॥

गौवें गोशालामें ठहरी हैं ।

कौरुपथिः । अध्यात्मं, मन्युः । अनुष्टुप् । (अथर्व० ११।८।३२)

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ५६२ ॥

(तस्मात्) इसीलिए (विद्वान् वै) ज्ञानी पुरुष सचमुच (पुरुषं इदं ब्रह्म इति मन्यते) पुरुषको यह ब्रह्म है, ऐसा मानता है, (हि) क्योंकि (सर्वाः देवताः) सभी देवता (अस्मिन्) इसमें (गोष्ठे गावः इव आसते) गोशालामें गौओंके समान बैठते हैं ।

गोतमो राहूगणः । मरुत; । गायत्री । (ऋ० १।८६।३)

उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ॥ ५६३ ॥

(उत वा) अथवा (यस्य) जिसके (वाजिनः) बलिष्ठ वीर किसी एकाध (विप्रं) ज्ञानीको (अनु अतक्षत) अनुकूल हो श्रेष्ठ बनाते हैं, (सः) वह (गोमति व्रजे) गौओंसे परिपूर्ण बाडेमें, गोकुलमें (गंता) जाता है अर्थात् बहुतसी गौएँ मिलजाती हैं ।

यदि वीर पुरुष किसी ज्ञानीके अनुकूल हो जाँय तो उसे बहुतसी गौएँ पाना सुगम होता है ।

संवरणः प्राजापत्यः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० ५।३४।५)

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥ ५६४ ॥

(पञ्चभिः दशभिः) पांच या दस साधन मिलनेसे (आरभं न वष्टि) आरंभ करना नहीं चाहता है (असुन्वता न च पुष्यता) सोमरस न निचोडनेवाले तथा दूसरोंका पोषण न करनेहारेसे (न सचते) भेंट नहीं करता है, नहीं मिलता है, पर (धुनिः) शत्रुको कंपायमान करनेवाला इन्द्र (जिनाति वा अमुया हन्ति वा) बाधा देता है या शस्त्रसे वध करता है और (गोमति व्रजे) गौओंसे युक्त बाडेमें (देवयुं आ भजति) देवकी कामना करनेवालेसे मिलता है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।२७।१)

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ ५६५ ॥

(यत्) जब (ताः पार्याः धियः युनजते) उन श्रेष्ठ कार्योंको या बुद्धियोंको काममें लाते हैं, तो (नरः) नेता लोग (नेमधिता इन्द्रं हवन्ते) युद्धमें इन्द्रको पुकारते हैं, हे इन्द्र ! तू (शूरः) वीर (नृषाता) मानवोंको विभिन्न कार्योंमें लगानेवाला, तथा (शवसः चकानः) बलकी इच्छा करनेवाला है, इस लिए (त्वं नः) तू हमें (गोमति व्रजे) गौओंसे युक्त बाडेमें (आ भज) पहुँचा दे ।

श्रुष्टिगुः काण्वः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ८।५१।५)

यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥ ५६६ ॥

(यः) जो (नः वसूनां दाता) हमें धनोंका देनेवाला बनता है, (तं इन्द्रं) उस प्रभुको (वयं हूमहे) हम बुलाते हैं, क्योंकि (अस्य नवीयसीं सुमतिं) इसकी नयी अच्छी बुद्धिको (विद्म हि) हम जानते ही हैं और (गोमति व्रजे गमेम) गायोंसे युक्त गोशालामें हम पहुँच जायँ ।

पुरुहन्मा आंगिरसः । इन्द्रः । सतो बृहती । (ऋ० ८।७०।६)

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्मान् अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिन् चित्राभिरूतिभिः ॥ ५६७ ॥

हे (मघवन्) ऐश्वर्य संपन्न ! (वृषन्) इच्छाओंकी पूर्ति करनेवाले ! (वज्रिन् शविष्ठ) वज्रधारी और बलिष्ठ प्रभो ! (चित्राभिः ऊतिभिः) विलक्षण संरक्षणोंसे (गोमति व्रजे) गायोंसे युक्त बाडेमें (अस्मान् अव) हमारी रक्षा कर, क्योंकि तू (महिना शवसा) बडे भारी बलसे (विश्वा वृष्ण्या) सभी इच्छापूर्तिके साधनोंको (आ पप्राथ) तू व्याप्त तथा फैला चुका है ।

मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ० ८।३२।५)

स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः । पुरं न शूर दर्षसि ॥ ५६८ ॥

हे शूर प्रभो इन्द्र ! (सः) वह विख्यात तू (मन्दानः) हर्षित होता हुआ (सोम्येभ्यः) सोमसे युक्त लोगोंके लिए (गोः अश्वस्य व्रजं) गायों तथा घोडोंके बाडेको (पुरं न) नगरीके तुल्य (वि दर्षसि) खोल देता है ।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।१६।६)

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तं उशिजो वि वव्रुः ॥ ५६९ ॥

(विश्वानि) सभी (नर्याणि) मानवोपयोगी कार्योंको (विद्वान् शक्रः) जानता हुआ इन्द्र, (निकामैः सखिभिः) नितान्त कामना करनेवाले मित्रोंके साथ (अपः रिरेच) जलोंको उन्मुक्त कर चुका; (ये उशिजः) जो कामना करनेवाले (अश्मानं चित्) पथरीले रहनेपर भी (गोमन्तं व्रजं) गौओंसे युक्त बाडेको (वचोभिः बिभिदुः) वाचाओंसे तोड चुके तथा (वि वव्रुः) ढक भी चुके ।

वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।४५।११)

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ५७० ॥

हे अग्ने ! (त्वां) तेरे प्रति (अनु द्यून) प्रतिदिन (यजमानाः विश्वावसु) यजमान लोग सारे धनोंको जो कि (वार्याणि) स्वीकारने योग्य हैं, (दधिरे) धारण कर चुके हैं, (उशिजः) उशिक् पुत्र (त्वया सह द्रविणं इच्छमानाः) तेरे साथ धनकी कामना करते हुए (गोमंतं व्रज वि वव्रुः) गायोंसे युक्त गौशालाको खोल चुके ।

नाभानेदिष्ठो मानवः । विश्वे देवाः । सतोबृहती । (ऋ० १०।६२।७)

इन्द्रेण युजा निःसृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत ॥ ५७१ ॥

(वाघतः) ढोनेवाले लोग (इन्द्रेण युजा) इन्द्रकी सहायतासे (गोमन्तं अश्विनं व्रजं) गायों तथा घोडोंसे पूर्ण बाडेको खोलकर (निः सृजन्त) बंद किए हुए पशुओंको बाहर छोड देते हैं, (मे) मुझको (सहस्रं अष्टकर्ण्यः) हजारोंकी संख्यामें व्यंग्यरहित गायें (ददतः) देते हुए (देवेषु श्रवः अक्रत) देवोंमें कीर्तिका विस्तार कर चुके ।

बिमद ऐन्द्रः । सोमः । आस्तारपङ्क्तिः (ऋ० १०।२५।५)

तव त्ये सोम शक्तिभिः निकामासो व्यृण्विरे ।
गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥ ५७२ ॥

हे (सोम !) (त्ये धीराः) वे धीर पुरुष (तवसः गृत्सस्य ते शक्तिभिः) बलवान एवं विद्वान तुझ जैसेकी शक्तियोंसे (नि कामासः वि ऋण्विरे) अपनी कामनाओंको तृप्त कर विविध स्तुतियाँ करते हैं, इसलिए (वः मदे) आपके आनन्दमें (गोमन्तं अश्विनं व्रजं) गाय एवं घोडोंसे पूर्ण बाडेको (वि) विशेष रूपसे प्रदान कर क्योंकि तू (विवक्षसे) बडा प्रशंसनीय है।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ४।३१।१३)

अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः । नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥ ५७३ ॥

हे इन्द्र ! (तान् गोमतः व्रजान्) उन गौओंसे युक्त बाडोंको, (अस्ता इव) फेंकनेवाले शूरके समान, (नवाभिः ऊतिभिः) नयी रक्षाओंके साथ तू (अस्मभ्य) हमारे लिए (अपावृधि) खोल कर रख दे।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।७३।३)

बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन् त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ५७४ ॥

(एषः देवः बृहस्पतिः) यह देवतारूपी बृहस्पति (महः गोमतः व्रजान्) बडे भारी गौओंसे युक्त बाडोंको (वसूनि सं अजयत्) और धनोंको ठीक प्रकार जीत चुका है, (अप्रतीत बृहस्पति) किसीसे रुकावटका अनुभव न लेता हुआ बृहस्पति (अपः सिषासन्) जलोंको विभक्त करना चाहता हुआ (स्वः अमित्रं) अपने शत्रुको (अर्कैः हन्ति) तेजस्वी साधनोंसे मार डालता है।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।१०।३)

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥ ५७५ ॥

(यः विप्रः) जो ज्ञानी मानव (उक्थैः अग्नये ददाश) स्तोत्रोंसे अग्निको आहुतियाँ दे चुका हो, (सः मर्त्येषु) वह मानवोंमें (श्रवसा पीपाय) अन्नसे पुष्ट होता है, (चित्रशोचिः) विचित्र आभासे युक्त अग्नि (गोमतः व्रजस्य साता) गौओंसे युक्त बाडेके बँटवारेमें (चित्राभिः ऊतिभिः) अद्भुत संरक्षणकी आयोजनाओंसे (तं दधाति) उसका धारण करता है।

सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ । अनुष्टुप् । (ऋ० ८।८।२०)

याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥ ५७६ ॥

हे (नरा) नेतृत्व गुणयुक्त अश्विनौ ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे मेधातिथि कण्वपुत्रकी एवं (दशव्रजं वशं) दस गायोंके बाडे रखनेवाले वशकी और (याभिः) जिनसे (गो शर्यं आवतं) जीर्ण गाय रखनेवाले शयुकी रक्षा की थी, (ताभिः नः अवतं) उनसे हमारी रक्षा करो।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अप्तृणसूर्याः। (विषघ्नोपनिषद्)। अनुष्टुप्। (ऋ० १।१९१।४)

नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥ ५७७ ॥

(गावः गोष्ठे नि असदन्) गौएँ बाडेमें सुखपूर्वक बैठी हैं, (मृगासः नि अविक्षत) हरन भी अपने अपने स्थानपर बैठे हैं, (जनानां केतवः) मानवोंकी पताकाएँ (नि) नीचे उतर आए हैं, या ज्ञानप्रवाह स्तब्ध हुए हैं, इस समय (अदृष्टाः) न दीख पडनेवाले विषयोंने मुझे (नि अलिप्सत) व्याप्त कर डाला है ।

शबरः काक्षीवतः। गावः त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१६९।४)

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥ ५७८ ॥

(विश्वैः) सभी (पितृभिः देवैः सं विदानः) पितरों तथा देवोंसे एकमत होकर (मह्यं एताः रराणः) मुझको इन गायोंका दान देता है और (शिवाः सतीः) ये कल्याणकारक होनेके कारण (नः गोष्ठं उप) हमारी गोशालाके समीप इन्हें (आ अकः) रखता है, इसलिए (तासां प्रजया) उनकी सन्तानसे (वयं सं सदेम) हम युक्त होकर बैठ जायँ ।

शिवाः नः गोष्ठं उप आ अकः= कल्याणकारक गौवें हमारी गोशालामें आकर रहें ।

[२०२] गौओंकी परिषद् ।

अथर्वा। यमः। त्रिष्टुप्। (अथर्व० १८।३।२२)

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥ ५७९ ॥

(सुकर्माणः सुरुचः) अच्छे कर्म करनेहारे और उत्कृष्ट कान्तिवाले (देवयन्तः) देवत्वकी कामना करते हुए (अयः न) जिस प्रकार कि सुवर्णकार तपाकर सोनेको शुद्ध करते हैं, वैसे ही (जनिमा धमन्तः) अपने जन्मोंको तपरूपी तापसे तपाकर शुद्ध करते हुए (देवाः अग्निं शुचन्तः) देवगण अग्निको प्रदीप्त करते हुए (इन्द्रं वावृधन्त) इन्द्रकी वृद्धि करते हुए (नः उर्वीं गव्यां परिषदं अक्रन्) हमारे लिए बडी भारी विस्तृत गौओंके समूहवाली परिषद् बनाते हैं ।

[२०३] गोशाला घीसे भरपूर हो ।

उपरिबभ्रवः। अघ्न्याः। त्र्यवसाना भुरिक् पथ्यापङ्क्तिः। (अथर्व० ७।७९।२)

पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः ।
उप मा देवीर्देवेभिरेत ।
इमं गोष्ठं इदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥ ५८० ॥

(रमतयः पदज्ञाः स्थ) तुम आनन्द देनेवाली हो, इसलिए अपने निवासस्थानको जाननेवाली हो। तुम (संहिताः विश्वनाम्नीः देवीः) इकट्ठी हुई बहुत नामवाली दिव्य गायें (देवेभिः मा उप एत) दिव्य बछडोंके साथ मेरे पास आओ, (इमं गोष्ठं, इदं सदं) इस गौशालाको और इस घरको, (अस्मान्) हमें भी (घृतेन सं उक्षत) घीसे भलीभाँति सिंचित करो ।

गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।७३।४)

आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताऽभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।

सकृत्स्वं १ ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥ ५८१ ॥

हे इन्द्र ! (ये) जो (ऊर्वं गोमन्तं) विशाल बाडेको जहाँपर गौएँ रखी थीं, (तितृत्सान्) ढहना चाहते थे, और (ये) जो (पुरुपुत्रां सहस्र-धारां) बहुत सन्तानवाली, खूब दूध देनेवाली (बृहतीं महीं) बडे शरीरवाली, महनीय (सकृत्स्वं दुदुक्षन्) तथा एकबार प्रसूत हुई गायका दोहन कर चुके वे (ते आयवः) तेरे मनुष्य (अभि आ पनन्त) प्रशंसित हो चुके हैं।

(१) पुरुपुत्रां सहस्रधारां महीं सकृत्-स्वं दुदुक्षन्= बहुत सन्तानोंवाली बहुत दुधारू गौका प्रसूत होते ही दूध निचोडा।

(२) गोमन्तं ऊर्वं= बडी गोशालाको चाहते थे।

सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १।५१।३)

त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।

ससेन चिद् विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ५८२ ॥

हे इन्द्र ! (त्वं अंगिरोभ्यः) तूने अंगिरा ऋषियोंके लिए (गो-त्र) गौके संरक्षण करनेवाला बाडा (अप अवृणोः) खोल रखा (शतदुरेषु अत्रये) सौ दरवाजोंसे युक्त जेलखानेमें डाले हुए ऋषि अत्रिको (गातुवित्) राह बतलायी (विमदाय चित्) ऋषि विमदको तो (ससेन वसु अवहः) अन्नके साथ धन दिया और (आजौ वावसानस्य) लडाईमें निरत वीरोंके संरक्षणार्थ (अद्रिं नर्तयन् आसि) तू अपना वज्र घुमाता रहा है।

वावसान = एक ऋषिका नाम है जिसका अर्थ है ' रहनेवाला ' ' आजौ वावसानः = युद्धमें रहनेवाला याने लडनेवाला। इन्द्रने बंद बाडा खोलकर अंगिरसोंको गौएँ दीं।

[२०४] गौओंके झुंड

सोभरिः काण्वः । इन्द्रः । सतोबृहती । (ऋ० ८।२१।१०)

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।

आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ५८३ ॥

(यः अमन्दत) जो जनसमूह हर्षित हो चुका है, (सः हि स्म) वह निश्चयपूर्वक (हर्यश्वं) हरे रंगके घोडोंवाले (सत्पतिं) सज्जनोंके पालनकर्ता एवं (चर्षणीसहं) शत्रुसेनाके पराभवकर्ता इन्द्रकी स्तुति करता है; (सः मघवा तु स्तोतृभ्यः नः) वह ऐश्वर्यसंपन्न तो स्तोता होनेके कारण हमें (गव्यं अश्व्यं आ वयति) गौओं और घोडोंके झुंडको दे देता है।

श्यावाश्व आत्रेयः । तरन्तमहिषी शशीयसी । अनुष्टुप् । (ऋ० ५।६१।५)

सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।

श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥ ५८४ ॥

(सा) वह महिला (अश्व्यं पशुं गव्यं शतावयं) घोडों तथा गायोंके झुंडसहित जानवरोंको जिनमें सौ भेडोंकी भी गिनती थी (सनत्) दे चुकी, (या) जो (श्यावाश्वस्तुताय वीराय) श्यावाश्वसे प्रशंसित वीरके लिए (दोः उप बर्बृहत्) अपनी भुजा समीप कर चुकी।

*

गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।२९।१२)

नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।

गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अपव्रन् ॥ ५८५ ॥

(नवग्वासः दशग्वासः) नौ या दस गौएँ साथ रखनेवाले लोग (सुतसोमासः) सोम निचोड चुकनेपर (इन्द्रं अर्कैः अभि अर्चन्ति) इन्द्रको अर्चनीय स्तोत्रोंसे पूजित करते हैं, (तं ऊर्वं) उस बडे भारी (गव्यं चित्) गायोंके झुंडको भी (शशमाना नर) स्तुति करते हुए मानवोंके नेता (अपिधानवन्त चित्) ढके हुए होनेपर भी (अपव्रन्) खोल चुके ।

वामदेवो गौतम । अग्निः, सूर्यो वाऽऽपो वा गावो वा घृतस्तुतिर्वा । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।५८।१०)

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।

इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥ ५८६ ॥

(गव्यं आजिं) गौओंके झुंडके प्रति (सुस्तुतिं अभि अर्षत) अच्छी स्तुतिको प्रेरित करो, (अस्मासु) हममें (भद्रा द्रविणानि) सुन्दर तथा हितप्रद धनोंको (धत्त) रख दो, (नः इमं यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (देवता नयत) देवोंके समीप पहुँचा दो, (घृतस्य धाराः) घीकी धाराएँ (मधुमत्) मिठास भरी (पवन्ते) टपकती हैं ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।१७।१)

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।

वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रं अमित्रिया शवोभिः ॥ ५८७ ॥

हे (उग्र इन्द्र) उग्र स्वरूपवाले इन्द्र ! (गृणानः) प्रशंसित होता हुआ तू (यं सोमं अभि) जिस सोमको पीनेके लिए (महि ऊर्व्यं गव्यं) बडा भारी गौओंका झुंड (तर्दः) बाहर ला चुका है, (पिब) उसका पान कर। हे (धृष्णो ! वज्रहस्त) शत्रुओंपर आक्रमण करनेहारे तथा हाथमें वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (यः) जो तू (विश्वा अमित्रिया वृत्रं) सारे शत्रुभूत वृत्रको (शवोभिः वि वधिषः) अपनी शक्तियोंसे मार चुका।

वामदेवो गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।२।१७)

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः ।

शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥ ५८८ ॥

(सुकर्माणः) अच्छे कर्म करनेवाले, (सुरुचः) अच्छी आभासे युक्त, (देवयन्तः) देवत्व पानेकी कामना करनेवाले (देवाः) विद्वान लोग (अयः न) लोहेकी तरह (जनिमा धमन्तः) अपने जन्मोंको मानो धौंकनीसे अग्निके समान उज्ज्वल या प्रदीप्त या विशुद्ध करते हुए (अग्निं शुचन्तः) अग्निको प्रदीप्त करते हुए (इन्द्रं ववृधन्तः) इन्द्रको बढाते हुए (परि सदन्तः) चारों ओर बैठते हुए (ऊर्व्यं गव्यं अग्मन्) विशाल गायोंके झुंडको पा गये हैं ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।१८।७)

आ पक्थासो भलानसो भनंताऽलिनासो विषाणिनः शिवासः ।

आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन् ॥ ५८९ ॥

(पक्थासः) हवि पकानेवाले, (भलानसः) अच्छे मुँहवाले, (शिवासः विषाणिनः) हितकारक तथा शृंगधारी (अलिनासः आ भनंत) तपस्वी स्तुति करने लगे; (यः सधमाः) जो एक साथ

होनेवाला है, (तृत्सुभ्यः) हिंसकोंसे (आर्यस्य गव्या) आर्यके गायोंके झुंड (अजगन्) प्राप्त किया, तथा (आ अनयत्) लिवा लाया (युधा नॄन्) लडाईसे शत्रुभूत मानवोंको पराभूत किया।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी । बृहती । (ऋ० ६।६०।१४)

आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै३रुप गच्छतम् ।

सखायौ देवौ सख्याय शंभुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ ५९० ॥

हे इन्द्र और अग्नि ! (नः उप) हमारे समीप (गव्येभिः अश्व्य वसव्यैः) गायोंके समूह, घोडोंके झुंड तथा धनसंपदाके संग्रहोंके साथ (आ गच्छत) आओ । (सखायौ) मित्र बने हुए (देवौ) दानी (सख्याय शंभुवा) मित्रताके लिए हितकारक (ता हवामहे) उन दोनोंको हम बुलाते हैं।

गोपवन आत्रेय सप्तवध्रिर्वा । अश्विनौ । गायत्री । ऋ० ८।७३।१४ १५)

आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ५९१ ॥

मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ५९२ ॥

हे अश्विनौ ! (नः सहस्रैः गव्येभिः अश्व्यैः) हमारे समीप हजारों गायोंके तथा घोडोंके झुंडोंके साथ (उप गच्छत) आओ ।

(न) हमें (सहस्रेभिः गव्येभिः अश्व्यैः मा अति ख्यतं) हजारों गायोंके झुंड एवं घोडोंके समूहसे छोडकर न जाओ (वां अवः) तुम्हारी रक्षा (अन्ति सत् भूतु) समीप रहनेवाली हो जाए ।

वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः । पङ्क्तिः । (ऋ० ५।६।७)

तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।

ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ५९३ ॥

हे अग्ने ! (तव त्ये) तेरी वे (महि अर्चय) महत्त्वपूर्ण ज्वालाएं (वाजिन) बलिष्ठ प्रतीत होती हैं, तथा (ये) जो (शफानां पत्वभिः) खुरोंके पतनके समान शब्द करती हुई (गोनां व्रजा भुरन्त) गौओंके झुंडको चाहती हैं, अर्थात् उनसे दुग्ध, घृत आदि हवनीय पदार्थोंकी कामना करती हैं, और (व्राधन्त) बढती है ।

बभ्रुरात्रेयः । इन्द्र । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।३०।४)

स्थिरं मनः चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।

अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥ ५९४ ॥

हे इन्द्र (जातः) उत्पन्न होनेपर (मन स्थिरं चकृषे) मनको अचंचल बना देता है, (एकः) अकेला रहनेपर भी (युधये) लडाईके लिए (भूयसः चित्) बहुतसे राक्षसोंसे भी जूझते रहनेके हेतु (वेषि इत्) चला जाता है; (शवसा) बलपूर्वक (अश्मानं चित्) पथरीले दुर्गको भी (वि दिद्युतः) तुमने फोड दिया और (उस्रियाणां गवां) दूध देनेवाली गायोंके (ऊर्वं विदः) झुंडको पा लिया ।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । इन्द्रो विश्वेदेवा वा त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१२१।४)

अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।

यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ५९५ ॥

हे इन्द्र ! (अस्य मदे) इस सोमपानके आनंदके कारण (ऋताय) यज्ञके लिए उपयुक्त (स्वर्यं अपिऽवृतं) स्तुत्य और पणीने गुफामें बंदकर रखा हुआ (उस्रियाणां अनीकं) गौओंका झुंड

(दाः) तूने दिया है, (यत् ह) जिस समय (प्रऽसर्गे) युद्धमें (त्रि ककुप्) तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ इन्द्र (निवर्तत्) घुस गया उस समय (मानुषस्य द्रुहः) मानवोंके द्वेष्टाओंके दुर्गोंके (दुरः) दरवाजे (अप वः) खोल दिये [जिन द्वारोंमेंसे गौएँ बाहर आ निकली]

तिरश्चीरांगिरसो, द्युतानो वा मरुतः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ० ८।९६।८)

त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।

उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥ ५९६ ॥

(त्वा) तुझको, (त्रिः षष्टिः मरुतः) तीन और साठ वीर मरुत् (राशयः उस्रा इव यज्ञियासः) गायोंके बडे बडे झुंडके समान पूजनीय होते हुए (वावृधानाः) बढाते रहे हैं (त्वा उप आ इमः) तेरे समीप हम आते हैं, (नः भागधेयं कृधि) हमारा भाग्योदय कर (ते शुष्मं) तेरे बलको (एना हविषा विधेम) इस तरहके हविर्भागसे हम पूजित करते हैं।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः, इन्द्रासोमौ वा । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।२८।५)

एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।

आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥ ५९७ ॥

हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न तथा (ततृदाना) शत्रुके हिंसक इन्द्र और सोम ! (युव) तुम दोनोंने (ऊर्वं) बडा भारी (अश्व्यं) घोडोंका समूह तथा (गोः) गायोंका झुंड (आ अदर्दृतं) पूर्णतया खोल रखा, (अपिहितानि) ढकी हुई गौएँ (क्षाः चित्) शत्रुओंकी भूमियोंको भी (अश्ना रिरिचथुः) बलसे तुम दोनोंने छुडाया था (तत् सत्यं एव) वह सत्य ही है।

भर्गः प्रागाथः । इन्द्रः । सतो बृहती । (ऋ० ८।६१।८)

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।

आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ५९८ ॥

(पुरु) बहुतसे (सहस्राणि शतानि च यूथा) हजारों तथा सैकडोंकी संख्यामें झुंडोंको (त्वं दानाय मंहसे) तू दानके लिए देता है, (पुरन्दरं इन्द्रं) शत्रुनगरियोंके तोडनेहारे इन्द्रको 'विप्रवचस) बुद्धिमानोंसे पूर्ण वचन कहनेवाले हम (अवसे) रक्षाके लिए (गायन्तः) स्तोत्रोंका पठन करते हुए (आ चकृम) अपने अभिमुख करते हैं।

[२०५] गायोंके झुण्डकी माता।

अत्रिर्भौमः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।४१।१९)

अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिः उर्वशी वा गृणातु ।

उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाऽभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥ ५९९ ॥

(उर्वशी यूथस्य माता) विस्तारशील और गायोंके झुंडकी मानो मातासी (इळा) भूमि (नः अभि) हमारे प्रति (गृणातु वा) अनुकूल भाव रखे; (बृहत्-दिवा) खूब जगमगानेवाली (उर्वशी वा) या फैलनेवाली (गृणाना) सराहना करती हुई (प्रभृथस्य) तेजके प्रदानसे (आयोः अभ्यूर्ण्वाना) मानवको ढक दे !

[२०६] गायोंके झुण्ड और बधिया बैल।

वशोऽश्व्य । इन्द्र । गायत्री। (ऋ०।८।४६।३०)

गावो न यूथमुपयन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः ॥ ६०० ॥

(मा उप) मेरे समीप (यूथ गावः न) झुंडके समीप गौएँ जैसे चली जाती हैं, वैसे ही (वध्रय यन्ति) बधियाए हुए बैल चले आते हैं।

[२०७] काली और लाल रंगकी गौओंमें श्वेत दूध।

सुकक्ष आंगिरसः। इन्द्र । गायत्री। (ऋ० ८।९३।१३)

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च। परुष्णीषु रुशत्पयः ॥ ६०१ ॥

हे इन्द्र! (कृष्णासु रोहिणीषु च) काली और लाल रंगवाली गायोंमें (त्वं रुशत् एतत् पयः अधारय) तूने चमकीला यह दूध रखा है।

[२०८] इक्कीस गुना सत्तर गायें पास रखना।

वशोऽश्व्य । वायु । सतो बृहती। (ऋ० ८।४६।२६)

यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम्।

एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः ॥ ६०२ ॥

(यः अश्वेभिः वहते) जो घोडोंसे आगे चला जाता है और (सप्ततीनां त्रिः सप्त उस्राः) इक्कीस बार सत्तर गौएँ (वस्ते) साथ रखता है, हे (सोमपा) सोम पीनेहारे तथा (शुक्रपूतपाः) बल वर्धक और पवित्र किये सोमरस पीनेवाले! (एभिः सोमेभि सोमसुद्भिः दानाय) इन सोमों तथा सोम निचोडनेवालोंसे संतुष्ट होकर तू दानके लिए प्रवृत्त हो।

७०×३×७ = १४७० (सप्ततीनां त्रि सप्त उस्रा) गायें (वस्ते) अपने पास रखता है।

[२०९] बैल, सांड और गौवें।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। अग्नि । गायत्री। (ऋ० ६।१६।४७)

आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि।

ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥ ६०३ ॥

हे अग्ने! (ते) तेरे लिए (हृदा तष्टं हविः) मन-पूर्वक तैयार किया हुआ हवि (ऋचा) ऋचाके साथ (आ भरामसि) चारों ओरसे ला देते हैं, (ते) तेरे लिए (ते) वे (उक्षण ऋषभासः) सेचनक्षम बैल (उत वशा भवन्तु) और गौएँ हों।

[२१०] गौओंके चारों ओर रहना।

भरद्वाजो बार्हस्पत्य । इन्द्र । त्रिष्टुप। (ऋ० ६।१७।५)

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत्।

महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥ ६०४ ॥

हे इन्द्र! (येभिः मन्दसानः) जिन सोमोंसे हर्षित होता हुआ तू (दृळ्हानि अप दर्द्रत्) सुदृढ स्थानोंको दूर तोडकर फेंकते हुए (उषसं सूर्यं) उषा तथा सूर्यको (अवासयः) अपने ठौरपर बिठला चुका, (गा परि सन्त) गौओंके चारों ओर विद्यमान (अच्युत महां अद्रिं) स्थिर महान् पहाडको (स्वात् सदस परि) अपनी जगहसे (नुत्थाः) हटा चुका।

[२११] गायोंका शुद्ध वंश ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । उषाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।६५।५)

इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवां अङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणां अभवत् देवहूतिः ॥ ६०५ ॥

हे (अद्रिसानो उषः) पहाडपर टिकनेवाली उषा ! (इदा हि) अभी (ते गवां गोत्रा) तेरे गायोंके वंशको (अंगिरसः गृणन्ति) अंगिरस् वंशमें उत्पन्न लोग प्रशंसित करते हैं, (अर्केण ब्रह्मणा च) पूजनीय साधनसे और ज्ञानसे (वि बिभिदुः) विशेष ढंगसे रुकावटको तोड चुके, (नृणां देवहूतिः सत्या अभवत्) मानवोंकी जो देवताओंकी पुकार थी, वह सच्ची हो गयी ।

गवां गोत्रा अंगिरसो गृणन्ति= गाइयोंके वंशोंका वर्णन अंगिरस ऋषि कर रहे हैं । वर्णन करने योग्य वे गौओंके अनेक वंश परिशुद्ध हैं, इसीलिये उनका वर्णन किया जा रहा है ।

[२१२] गायोंका गर्भ ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः । पादनिचृत् (ऋ० ७।१०२।२)

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् । पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ ६०६ ॥

(यः पर्जन्यः) जो मेघ (ओषधीनां गवां) वनस्पतियोंमें तथा गौओंमें (अर्वतां पुरुषीणां) घोडियों और स्त्रियोंमें (गर्भं कृणोति) गर्भका स्थापन करता है ।

गवां गर्भं कृणोति= गौओंका गर्भ करता है ।

[२१३] गायोंकी प्राप्ति ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पूषा । गायत्री (ऋ० ६।५३।९)

या ते अष्ट्रा गोओपशाऽऽघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ६०७ ॥

हे (आघृणे) दीप्त पूषन् ! (ते या पशुसाधनी) तेरी जो पशुओंकी साधना करनेहारी (गो-ओपशा अष्ट्रा) गायोंको प्राप्त कर देनेवाली अंकुश है, (तस्याः ते) तेरे उस अंकुशसे (सुम्नं ईमहे) हम सुख चाहते है ।

अंकुशसे शत्रुओंका नाश करके, उनके गौओंकी प्राप्ति करानेवाली अंकुश है । अष्ट्रा=अंकुश

[२१४] गायोंके लिये युद्ध करते हैं ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।२५।४)

शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत् कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥ ६०८ ॥

(शूरः शरीरैः वा) वीर पुरुष शारीरिक बलोंसे भी (शूरं वनते) वीर शत्रुका पराभव करता है, (यत्) जब (तरुषि) युद्धक्षेत्रमें (तनूरुचा) शारीरिक सामर्थ्यके कारण जगमगानेवाले दोनों सैनिक (कृण्वैते) लडाई करने लगते हैं, (यत् तोके) जब सन्तानके निमित्त, (गोषु तनये अप्सु वा) गायोंको पानेके लिए, पुत्रके लिए, जलोंके लिए और (उर्वरासु) उपजाऊ भूमियोंके लिये (क्रन्दसी वि ब्रवैते) चिल्लाते हुए विशेष रूपसे युद्ध करते हैं । तब परस्पर पराभव करनेकी इच्छा करते हैं ।

गोषु क्रन्दसी वि ब्रवैते= गौओंके लिये युद्ध करते हैं ।